

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186341

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No

R 1480.5

Accession No.

P.G.H. 3436

Author

A 31-

Title

31st Oct

This book should be returned on or before the date last marked below.

तीस-चासीस वर्ष पहले तक बेतार का तार गप्प या जादू माना जाता था और समझते हैं कि वह केवल एक वैज्ञानिक यन्त्र है। इसी तरह हमारे भी यह नीचे बताए यन्त्र हैं जो सब सत्य हैं और बिना किसी मेहनत-परेशानी कौशियों के स्वर्ण पर आपको न सिर्फ लक्षपति बना देंगे बल्कि हर समाज में आपको मान-प्रतिष्ठा दिलाएँगे। जादू-सम्राट का सम्मान राजा से कम नहीं होता। यह सब सो घर बैठे ही केवल एक दिन में सहज ही सीखे जा सकते हैं और फिर दूसरे ही दिन कहीं भी कभी भी दिखाए जा सकते हैं। कोई सिद्धि कोई जप नहीं करना पड़ता। प्रत्येक शो में वर्षों तक काम देने वाला उसका पूरा बना बनाया तैयार सेट, उसकी सरल और पूरी विधि सहित भेजा जाता है।

* **मैजिक बक्स** : इस बक्स में ताश का पत्ता जला कर डाल देने से फिर खोल कर देखने पर वह पत्ता सही और साबुत निकलेगा। सादा कागज जला कर डालने पर, नोट और, रुपया डालने पर एक बार वह गायब हो जाएगा और दूसरी बार मिल जाएगा। (मूल्य २)

* **मैजिक फ्लेनल** : इसको स्त्री ही नहीं, किसी पुरुष की भी देह से छुआते ही इसमें से दूध की धारा निकलने लगेगी और इसको हटाते ही धारा निकलना बन्द हो जाएगी। (मूल्य २॥)

* **मैजिक गेंद** : यह रंग-बिरंगी गेंद सूत की डोर में गिरोई हुई है। आपके आदेश पर यह चलेगी-दोड़ेगी और रुकेगी। (मूल्य १॥)

* **तिरलोचनी** : इस छोटी-सी लकड़ी में तीन छेद हैं। किसी मे, बीच के छेद में सीक डालने को कहने पर वह सीक को सिरवाले छेद में ही डालेगा। (मूल्य १)

* **कापड़ से नोट** : सादे कागज को जला कर उसकी राख से सबके देखते-देखते नोट बना देना। (मूल्य १॥)

* **मैजिक मिस्ट्रीज़** : इसके द्वारा अपनी आँखों पर पट्टी बँधवा कर आप खिन्न सकते हैं, पढ़ सकते हैं और मोटर साइकिल चला सकते हैं। बहुत बड़ा जादू-गर जब किसी नगर में जादू-विद्या का प्रदर्शन करता है तो पहले दिन अपनी आँखों पर पट्टी बँधवा कर इसी के द्वारा मोटर साइकिल से नगर के प्रमुख मार्गों पर चल कर सहज ही नागरिकों पर अपना प्रभाव जमा देता है। (मूल्य ५)

* **तिब्बत का बक्स** : किसी दर्शक की चर्ची इस बक्स में उठी से रखवा कर और ताला लगवा कर बक्स उठी को दे दिया जाता है। परन्तु फिर ताला खोल कर देखने पर उसमें चर्ची नहीं मिलती। वह दूर मेज पर रखी डबल रोटी के काटने पर उसके अन्दर से निकलती है। (मूल्य ३॥)

* **विचित्र गोला** : यह एक ठोस रंगीन गोला सबके सामने देखते-देखते हाथ ही हाथ में एक से दो, फिर तीन और फिर चार बन जाते हैं। इसके बाद चार के तीन, दो और अन्त में एक रह जाता है। (मूल्य ३)

* **मास्टर मैजिक** : सबके सामने दर्शक के हाथ में से अंगूठी उड़ कर दूर रखे गिलास में पहुँच जाती है और फिर वहाँ से भी गायब हो कर डबल रोटी के अन्दर से निकलती है। (मूल्य ३॥)

* **ताश का पूरा सेट** : ताश के नवीन चमत्कार के इस पूरे सेट द्वारा आप ताश के बीसो खेला दिखा कर धुरन्धर विद्वानों को भी चकरा और हैरत में डाल देंगे। (मूल्य ११)

* **मैजिक सिगरेट** : हवा में से दर्जनों असली सिगरेट पकड़ लेना और चाहते ही तुरन्त सबको हवा में उड़ा देना। (मूल्य २॥)

* **मेसैरेजम शो** : लकड़के को जमीन पर छिटा कर और चादर से ढँक कर बेहोशी के हालात में उससे सारे दर्शकों के अजीबो-गरीब प्रश्नों के उत्तर ठीक-ठीक बता देने का गुप्त रहस्य इस कोर्स द्वारा आप घर बैठे ही केवल एक दिन में सीख जाएँगे और फिर आप दूसरे ही दिन अपने आपको "मेसैरिस्ट" प्रसिद्ध कर सहज ही धन-मान और यश प्राप्त कर सकेंगे। (फ्री ३)

नोट :—(१) पॉय रुपए से कम का माल नहीं भेजा जाता। (२) माल की कम-से-कम चौड़ाई क्रीमत पहले आनी चाहिए।

१४३, यूनाइटेड मैजिक कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, मुरादाबाद.

Phone No. 4907

N. NARSIMLU

CLOTH MERCHANT

**SULTAN BAZAR NEAR KOTHI
HYDERABAD-DN.**

STOCKISTS
LATEST DESIGN
SILK &
HANDLOOM SAREES
ALL
CENTERS OF INDIA
&
GENTS DRESS
MATERIALS
&
BINNEY & METTUR
DEALERS
DURABLE FOR DAILY USE &
ATTRACTIVE FOR
MARRIAGE PURPOSES

**TRY ONCE
BE SATISFIED.**

**Guaranteed Radical &
Permanent Cure**

FOR

Prematured Grey - Hair
Cawasjee Jiwandjee Memorial Lab's
Genuine Offer

**SHYAMLA
BAL-KALA POWDER**
AYURVEDIC

- ❖ Breaks Hair-Dye Habit
- ❖ Restores Lustre & Blackness
- ❖ Harmless to Skin Brain & Vision
- ❖ Can be used for Beard &
Moustaches
- ❖ No bad Odour
- ❖ Leaves No Stain
- ❖ Use once a Week for 20 Weeks

Sole Agents (for 2 years only)

M/s. 'ROOPAM'

Chil Bunda, Sultan bazar, Hyderabad.

‘अजन्ता’

हिन्दी प्रचार सभा, नामपल्ली स्टेशन रोड, हैदराबाद (आन्ध्र-प्रदेश)

विज्ञापन दर

आदरण पृष्ठ संख्या २ अन्तिम	१२५ रु०	प्रति मास
„ पृष्ठ संख्या ३	९० रु०	„
„ पृष्ठ संख्या ४	९० रु०	„
भीतरी प्रथम पृष्ठ	७५ रु०	„
साधारण भीतरी पृष्ठ	६० रु०	„
„ आधा „	३० रु०	„
„ चौथाई „	१५ रु०	„

वर्ष भर के लिए विज्ञापन देने पर २० प्रतिशत कमीशन दिया जाएगा ।

छः मास के लिए विज्ञापन देने पर १५ प्रतिशत कमीशन दिया जाएगा ।

तीन मास के लिए विज्ञापन देने पर १० प्रतिशत कमीशन दिया जाएगा ।

‘अजन्ता’ में विज्ञापन दे कर लाभ उठाइए ।

आज्ञा

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ११

जुलाई-अगस्त १९५६

प्रश्न ७-८

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार, विद्यामार्तण्ड

संचालक

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-दक्षिण

अनुक्रम

वैष्णव मंदिर का गरुड-स्तम्भ	बन्दर का पेजा	
रागेय राघव	लीलाधर त्रिवेदी	५३
दो कविताएँ	राजस्थानी-साहित्य की परम्परा और प्रगति	
हीरालाल तिवारी	रामचन्द्र 'बोडा'	६१
ग्राम का गीत	चिर स्मरणीय नेता श्री गोपालकृष्ण गोखले	
सरोजिनी नायडू	मदन गोपाल	६४
उर्दू ग़ज़ल	गीता और गोंधी जी	
कमल प्रसाद 'कमल'	नि० छ० जमींदार	६७
टालस्टाय : जैसा गोर्की ने उन्हें देखा	आन्ध्र के सगीताचार्य, महान् सन्त कवि : त्यागराज	
लीलाधर त्रिवेदी	दण्डमूडि महीधर	७०
बुद्ध का अनात्मवाद और पुनर्जन्म	कला-चाँ :	७३
विश्वनाथ वाजपेयी	कलाकार मुदिशिलयानि : भाऊ समर्थ	
डिगल-काव्य में वीर और श्रृंगार-रस का अद्भुत मेल	अवनीन्द्र नाथ : एक भारतीय कला साधक	
नरेन्द्रकुमार भनावत	कृष्णकुमार वर्मा 'राज' ।	
मध्यवर्ग : एक अभिशाप	चिट्ठी-पत्रो :	७७
राष्ट्रबन्धु	ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शारत्री, पुरुषोत्तम जोशी,	
सोवियत संघ में मजदूर संघठन और संचालन	लक्ष्मीनारायण शर्मा मुकुंर, इन्द्रविद्या	
रामेश्वर प्रसाद मेहरोत्रा	वाचस्पति किशोरीदास वाजपेयी, गोपी	
भोजपुरी कदावतों में लोक-विश्वास	वल्लभ उपाध्याय, भीमरेन 'निर्मल' ।	
सत्यदेव ओझा	नीर-क्षीर :	८१
सम्पादकाचार्य वाजपेयी जी	परम्परा भाग ६-७, विज्ञान के नए चरण,	
गौरीशंकर गुप्त	महापुरुष कीर्तनम, 'कलील' शिफाई और	
चौबेजी	उनकी शायरी, वंशीधर वियालंकार ।	
मोहन दुबे	फतह नामा गुरु खालमाजी का, कला के	
महापुरुषों की दृष्टि में राष्ट्र भाषा हिन्दी	लिए, शिष्टाचार, बक-व्यूह, कुदासा,	
श्रीमती सुमित्रादेवी अप्रवाल	धरती हमारी है, हर्ष, हमारे सहयोगी :	
प्रौढ़-शाला	रमवन्ती (पाण्डेय स्मृति अंक) समालोचक,	
चन्द्रशेखर दुबे	कल्पना (सौवा अंक) आपका स्वास्थ्य	
दखनी सुभाषित	(स्कूल स्वास्थ्य विशेषांक) नयोग व्यापार	
श्रीमती लक्ष्मी देवी	पत्रिका : ऋषि मामचन्द कौशिक ।	
प्राचीन शिला-लेखों में संस्कृत भाषा	सामयिक :	८६
कु० अमृता भारती	मे कयों चित्रण करता हूँ, श्रीकृष्ण देवराय	
राजस्थान के साहित्य मर्मज्ञ श्री अगारचन्द नाइटा	मारियन एडीमन ।	
से एक भेंट	सम्पादकीय :	८३
शिवगोपाल मिश्र	वंशीधर वियालंकार	
नए युग की कविता		
सत्येन्द्र श्री वास्तव		



वर्ष ११

जुलाई-अगस्त १९५९

अंक ५८

वैष्णव मन्दिर का गरुड-स्तम्भ

बोंधे हाथ, बैठ वीरासन, तू शताब्दियों से हो नत-शिर
महाविष्णु के सम्मुख करता वन्दन एक ध्येय से हो स्थिर
महासमय उड़ता जाता है क्षितिज-पंख को चला-चला कर
किन्तु स्तमित दिक्काल किए तू भूल गया है सकल चराचर

अहे पवनगति ! झोंक गया जो शिल्पी तेरे पंख मनोहर—
इस पत्थर में, रुद्ध कर गया नश्वर गति को कर अविनश्वर
कैसा होगा उसका विप्लव मन का, जो यह छवि अंकित कर
स्वयं खो गया, पर प्रतीक बन बैठा है तू अमर शान्ति भर

तेरे पंखों के कंपन से हिलते थे डग मग कर भूचर
महाविष के दूत साहसी उड़ता था तू सब के ऊपर

तिमिर-नाग के लिए स्वयं तू वीर सूर्य था चिर प्रकाशधर
सकल दासता तू ने तोड़ी अपने ही पंखों के बल पर !
महावीर ! जब भीम पराक्रम धारण कर तू भर कर हुंकारित—
उड़ता था, तब सागर गर्जन बन जाते थे कोमल भङ्कित

तेरे नयन विजलियों जैसे महाशून्य को लक-लक करते
तेरे पंख अग्नि से धक धक स्फुरित शक्ति-विकिरण थे भरते !
वसुधा के ये महाद्वीप तू देखा करता था झुक-झुक कर
हिमशृंगों पर शान्ति-स्वास ले फिर उड़ता था आधी भर भर

ओ सुपर्ण ! विकराल स्फूर्तिधर अब कैसा तू शान्त विमुक्त मन
श्रद्धामय नयनों से तकता किन्तु नहीं भरते हैं लोचन !
तू अनन्त के सम्मुख आया इसीलिए नतशीश हो गया
गर्वे नष्ट हो प्रीति बना तब गति-भ्रम का तम आप सो गया

जुड़े हाथ आदर से तेरे युग-युग से फिर छूट न पाए
चिर महान् के नीराजन में, तेरे पंख नमित हो आए !
पहले तू उड़ता था प्यासा, प्यास किन्तु फिर तृप्ति बन गई
इस बन्धन में स्वयं बँधा तू और दासता मुक्ति बन गई

चिर प्रवाह जीवन के शाश्वत तेरे पंखों में बंदी हैं
तू अमूर्त बन काल बन गया, पल क्षण अब तेरे संगी हैं !
सुन्दरता की अमर तृषा ने तुझे भक्ति वरदान दे दिया
तूने झुक कर कल्प कल्प स जीवन का रस-गान ले लिया

ओ पाषाण ! देख तुझ में ही पत्थर भी गति का प्रतीक है
तू विभिन्न मन विन्दु विन्दु की सुन्दरतम बन गई लीक है
भय से बन आतंक, घहर कर तू शिल्पी का प्यार बना है
तेरे रोम रोम में आ कर लोकों का शृंगार घना है

तू शताब्दियों में स्थिर बैठा तो शताब्दियाँ बहती जाती
ओ अनन्त के पन्थी ! कइ तो ये कब तक यों चलती जाती !
घरटे, झालर और आरती मधुर गन्ध, औ' उत्सव मंगल
दुखियों की प्रार्थना अनेकों, सब कुछ देख रहा तू अविकल

उठते राष्ट्र, और गिर जाते और जातियाँ ही खो जातीं
राज्य व्यवस्था धर्म नियम की भीड़ें हैं तम को ढो जातीं
किन्तु एक साक्षी तू बैठा देख रहा पीढ़ी दर पीढ़ी
जन्म मृत्यु हैं उतर चढ़ रहे तेरे मनुमुख जीवन-सीढ़ी

जब तक क्षमावन्त है आगे तू भी होगा शीश नवाए
स्वयं पूर्ण बन शक्ति रहेगा विनय-कीर्तिमय स्नेह-सुहाए ।
जिस क्षण में कर रहा असीमित हुआ भाव में स्वयं पूर्ण हो
सब कुछ मिटे, मिटे तेरी छवि किन्तु रहेगा तू शाश्वत हो

तुझे देखता मैं विस्मित हो इन पंखों में अब भी दुर्धर
उंचासों तूफान दीखते कर उठते युग युग में मर्मर !
कब तक बोल यहाँ बैठा तू सबको देख, नहीं देखेगा,
तुझे बोल यह काल अवधिमय अपने कन्धों पर झेलेगा ?

तू विराट है जो कहता है—है विराट से भी विराटतर,
तेरे तन के अणु अणु में वह तेरा शिल्पी करता मर्मर...
कला पूर्ति है, सामंजस्या उसमें सब कुछ है सुन्दरतर,
शक्ति विनय से आदर पाती सुन्दरतर की हो सुन्दरतर ।

देख देख अनिमेष निरन्तर इसीलिए तू हुआ देवता
सृजन प्रलय में अप्रतिहत तू, सब से तेरा मौन खेलता !
तू तो अब भी गति अनन्त है, सञ्जम के नय । तू चिर वन्दन !
पत्थर तुझ में प्राण बन गया महापूर्ण का बन कर स्पर्दन ।

दो कविताएँ

प्यार नहीं करता हूँ तुम को
 देखा करता हूँ पथ
 आती हो जिम से तुम गागर लेकर
 छलक छलक जाता पानी पथ पर
 कुछ सारी के आँचल पर
 सोच रहा हूँ—
 काश, फिसल पड़ती तुम पथ पर कभी
 कि जैसे मे फिमला हूँ अभी
 (जीवन पथ पर स्नेह भरी गागर के पानी से)
 प्यार नहीं करता हूँ तुम को
 लेकिन जब तुम आती नहीं किसी दिन
 पानी लेने कूँ से
 पलकें रहतीं बिछी पंथ पर
 और जान पड़ता हूँ मैं भी कुछ खोया खोया सा
 सांध्य गगन की सिंदूरी आभा तिरती नयनों में
 जो धीरे धीरे तम की चादर में खो जाती हैं
 कभी न आँख टिकीं तुम्हारे मद माते नयनों पर
 लेकिन लगता ऐसे ही कुछ नयन तुम्हारे होंगे
 बिना और तम का यह संगम मोहक सा लगता है

नयनों में तिरती संस्था या आँखें ? कह न सकूँगा
 किन्तु सत्य यह है कि मेरा प्यार नहीं है तुम से
 नहीं चाहता कभी कि तुम जीवन निशीथ में आओ
 चंदा और चांदनी सी जीवन में घुल मिल जाओ
 लेकिन तुम्हें दूर करने को जी भी नहीं चाहता

प्यार करता हूँ तुम्हें मे
 जब जुन्हाई भौंकती घूँघट उठा कर बादलों का
 नहा उठती कमलिनी प्रस्वेद से
 अलि कोइ मैं जिसके छिपा रहता
 मलय चुप चुप सुना जाता कहानी
 लता को रनके मिलन की
 और तब—जी यही करता कि होती बाँह में तुम
 किन्तु जब तुम साथ होती हो
 और मैं हूँ देखता कमलिनी के खिले आनन को
 और सुनता सधुप का गुंजन
 कि जिस पर लाज का ताला लगा रहता
 हृदय खिलता कमलिनी सा
 तभी ईश्यां उसे आ ढाँप देती नील आँचल से

ग्राम का गीत

मैं घड़ा भर चुकी हूँ
 मेरा घर दूर है
 रास्ता लम्बा और अकेला है
 मैं क्यों जान-बूझ कर देरी कर रही हूँ
 क्या मैं नाविक के गीत के प्रति आकृष्ट हो गई हूँ ?
 रात्रि का अन्धकार बढ़ता चला जा रहा है
 यह जंगली ठण्ठ की आवाज है !
 चन्द्रमा की सुकुमार किरणों प्रकाशहीन हो गई हैं ?
 यदि अन्धकार में मुझे कोई सॉप काट खाए
 या कोई बुरी स्पिरिट मुझे पकड़ ले
 राम रे राम—मैं मर जाऊँगी

भाई नाराज होगा और कहेगा : “उसे इतनी देर क्यों हो गई ?”
 मैं प्रतीक्षा करेगी, रोएगी और प्रार्थना करेगी :
 “भगवान्, उसे कुशलतापूर्वक घर पहुँचा दो”
 यमुना का जल गहरा है
 यमुना का जल तेज है
 सन्ध्या का अन्धकार काले पक्षियों की तरह
 काला होता जा रहा है
 यदि औंधी और वर्षा आगई—तो
 मेरा क्या होगा ?
 विजली कौदेगी—मैं कहीं अपने को प्रश्रय दे सकूँगी ?
 तू-मेरे साथ चलकर--मुझे मार्ग दिखा।
 नहीं तो
 राम रे राम—मैं मर जाऊँगी

उर्दू शज़ल

ज़िम में काँटों पे भी निखार नहीं
वो खिज़ाँ हो तो हो बहार नहीं

कोई देखे यह रंगे--शामे--बहार
पी रहा हूँ मगर खुमार नहीं

उन निगाहों की तीरगी मत पूछ
जिन में मुलगे कभी शरार नहीं

इतने धोखे दिए बहारों ने
दिल में अब हसरते--बहार नहीं

उन की नज़रों से हर कली को बचा
उन बहारों का एतेबार नहीं

आज ही हाले--दिल मुनाना था
आज ही दिल पे इख्तियार नहीं

ममलके इश्क है हिफाजते-हुस्न
मंजिले इश्क कूए-यार नहीं

टाल्स्टाय : जैसा गोर्की ने उन्हें देखा

लियो टाल्स्टाय और मैक्सिम गोर्की दोनों ही रूस के महान् लेखक हो गए हैं। दोनों समसामयिक भी थे। टाल्स्टाय की मृत्यु हुई १९१० में और गोर्की की १९३६ में। टाल्स्टाय की गिनती केवल महान् साहित्यकारों और सर्वश्रेष्ठ कथाकारों में ही नहीं होती, उनकी एक विशेषता यह भी मानी जाती है कि वे अहिंसा के अन्य-तम माधक थे। १९२८ में महात्मा गांधी ने उनके बारे में लिखा था “टाल्स्टाय का जीवन में सबसे चमत्कारपूर्ण बात मुझे यह लगी कि उन्होंने जो उपदेश किया उसे ही अपने जीवन में उतारा भी। मृत्यु के सधान में उन्होंने किसी भी मूल्य को बहुत बढ़ा न समझा.... वे आधुनिक युग में अहिंसा के गम्भिर बड़े संदेशवाहक थे।”

जहाँ तक गोर्की का सम्बन्ध है उनकी भी गिनती संसार के सर्वश्रेष्ठ कथाकारों में होती है। यद्यपि वे जीवन पर्यन्त साम्यवादी विचारधारा के प्रबलतम समर्थकों में रहे जिसकी झलक उनकी अनेक रचनाओं में मिलती है पर उससे उनकी रचनाओं की कलात्मकता पर कोई आंच नहीं आई।

टाल्स्टाय के बारे में गोर्की ने जो टिप्पणियाँ लिखी हैं वे बहुत दिलचस्प तो हैं ही, साथ ही साहित्य की दृष्टि से भी उनका मूल्य है, उनसे टाल्स्टाय के व्यक्तित्व और विचारों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

ईश्वर और धर्म : गोर्की ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा है : “स्पष्टतः जो विचार किसी भी अन्य विचार के अधिक टाल्स्टाय की मानसिक शान्ति को उद्बोला करता है वह है ईश्वर का विचार। कभी-कभी यह विचार मात्र नहीं मालूम पड़ता पर किसी ऐसी बात के प्रति, जिससे वे (टाल्स्टाय) अपने को अभिभूत समझते हैं, एक तीव्र प्रतिरोध सा लगता है। वे इस सम्बन्ध में उतना नहीं बोलते जितना कि बोलना चाहते हैं पर उसके बारे में निरन्तर सोचते रहते हैं। मैं नहीं समझता कि यह उम्र का लक्षण है या ऐसा मृत्यु की पूर्व धारणा के कारण होता है। अधिक संभव है कि ऐसा एक अच्छे किस्म के मानवीय अभिमान के कारण होता हो।

शायद एक क्षांत की भावना से भी, लियो टाल्स्टाय, लज्जापूर्वक एक भीषण किस्म के कोड़े की इच्छा के समक्ष झुकते हैं। यदि वे पदार्थ-शास्त्री होते तो उन्होंने निःसंदेह शानदार कल्पनाएँ और बड़े अनुसंधान किए होते।

एक बार टाल्स्टाय ने मैक्सिम गोर्की से बातचीत के मिलसिले में कहा : “अल्पसंख्यकों (अमीरों) को ईश्वर की डमलिए आवश्यकता होती है कि उनके पास और सब कुछ रहता है और बहुसंख्यकों (गरीबों) को डम लिए कि उनके पास और कुछ भी नहीं होता।”

गोर्की एक अन्य टिप्पणी पर लिखते हैं : “टाल्स्टाय ने मुझे बुद्ध की प्रज्ञोत्तर के रूप में शिक्षा पढ़ाने की मलाह दी। वे जिम तरीके में ईसा और बुद्धवाद के बारे में बातें करते हैं उसमें बराबर कुछ-कुछ भावप्रवणता होती है—उसमें न उल्हास होता है और न दुःख और न ही हृदय की आग की एक भी चिनगारी। मेरा खयाल है कि वे मसीह को अकृत्रिम और सीधा-पादा समझते हैं, दया का पात्र और यद्यपि वे (टाल्स्टाय) कुछ बातों में उनकी प्रशंसा करते हैं, पर यह संभव नहीं कि वे उन्हें प्यार करते हों। और लगता है कि उन्हें इस बात का डर है कि यदि ईसा मसीह किसी रूसी गाँव में आ जाएँ तो लश्कियाँ उन पर हँसेगी।”

गोर्की आगे लिखते हैं : “मुझे उन्होंने जो डायरी दी उसमें यह विचित्र बात लिखी देख आश्चर्य हुआ कि—ईश्वर मेरी इच्छा है।”

जब आज मैंने उन्हें उसको वापस दिया तो पूछा कि उससे उनका क्या मतलब था। “एक अधूरा विचार,” उन्होंने डायरी के उस पृष्ठ को देख कर अपनी आँखें कुछ-कुछ मींचते हुए कहा, “मैंने यह कहना चाहा होगा—ईश्वर उनकी अनुभूति करने की इच्छा है... नहीं, यह नहीं...” वे हँसे, डायरी बन्द की और उसे अपनी कमीज की बही जेब में ठूँस लिया। ईश्वर के साथ उनके (टाल्स्टाय के) सम्बन्ध अनिश्चित हैं, कभी-कभी उसके कारण मुझे “एक मॉद में दो भालुओं” की बात सोचनी पड़ती है।

“टाल्स्टाय ने एक बार मुझ से कहा : ‘गोर्की

अपनी एक अन्य टिप्पणी में लिखते हैं: “हमारा क्या मतलब होता है जब हम कहते हैं कि हम जानते हैं?” में जानता हूँ कि मैं टालस्टाय हूँ, एक लेखक, मेरी एक पत्नी है, बच्चे, पके बाल, एक बदशक्ल चेहरा, एक दाढ़ी—यही सब मेरा स्वरूप है, पहचाने जाने का लक्षण। पर किसी का स्वरूप पहचानने में हम किसी की आत्मा में प्रवेश नहीं करते। मैं अपनी आत्मा के बारे में जो कुछ भी जानता हूँ वह यही है कि वह ईश्वर के निकट पहुँचने के लिए बेचैन है। पर ईश्वर क्या है? वही जिसका एक कण मेरी आत्मा है। बस यही। कोई भी, जिसने सोचना सीख लिया है इसमें विश्वास करने में कठिनाई का अनुभव करता है, पर ईश्वर में विश्वास के जरिए ही रहा जा सकता है। तुर्लियन ने कहा है—“विचार बुलाई है।”

स्त्री के सम्बन्ध में विचार: गोकर्ण एक अन्य टिप्पणी में लिखते हैं—“उनके (टालस्टाय के) गप शप के प्रिय विषय ईश्वर, किसान और स्त्री हैं। साहित्य के सम्बन्ध में वे कभी-कभी ही और बहुत कम बोलते हैं, मानो वह उनके स्वभाव के विपरीत विषय हो। और स्त्रियों के सम्बन्ध में, जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, उनका रुख बड़ा शत्रुता का है। उन्हें दराद देने से अधिक वे किसी चीज को पसन्द नहीं करते जब तक कि वे किसी और नताशा रोस्तोवा की भाँति ही माधारण स्त्रियों न हों। क्या यह उस आदमी की प्रतिशोध की भावना है जिसे वतनी खुशी नहीं मिली जितने का वह हकदार था या “शारीरिक आकर्षण की अपमानजनक प्रेरणाओं” के प्रति आत्मा की शत्रुता है। जो कुछ भी हो, यह शत्रुतापूर्ण भावना है और सो भी बहुत तीव्र जैसी कि उनके “अज्ञा केरेतिना” उपन्यास में है।

व्यक्तिगत प्रतिभा: टालस्टाय की व्यक्तिगत प्रतिभा और कुछ विलक्षणताओं के बारे में गोकर्ण ने अनेक टिप्पणियाँ लिखी हैं।

गोकर्ण एक स्थान पर लिखते हैं: “उनके (टालस्टाय के) हाथ आश्चर्यजनक हैं—भेदे, अपनी उमरी हुई नसों के कारण बदशक्ल, और फिर सी आश्चर्यजनक रूप में अभिव्यंजनशील, रचनात्मक शक्ति से भरपूर। कभी-कभी जब वे बातें करते हैं अपनी उँगलियों को घुमाते रहते हैं, कोई बच्चा और भारी शब्द बोलते हुए उनको धीरे-धीरे मोड़ते और खोलते हैं। वे एक देवता की

तरह हैं, कोई और देवता नहीं बल्कि एक रूसी देवता जो मानो “एक सुनहरे नींबू के पेश के नीचे एक लकड़ी के सिंहासन पर बैठे हों।” और शयपि वे उतने शान-दाग न हों, शायद वे अन्य सभी देवताओं से भी अधिक चालाक हैं।”

टालस्टाय मुझे किसी ऐसे तीर्थयात्री का स्मरण दिलाते हैं जो हाथ में लकड़ी का एक छोटा-सा डण्डा लिए अपने समूचे जीवन पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं, एक मठ से दूसरे मठ, एक समाधि से दूसरी समाधि, बिलकुल ही गृहहीन और हर व्यक्ति और हर चीज से अपरिचित से। यह दुनिया उनके लिए नहीं है और न ईश्वर ही। वे (ऐसे तीर्थयात्री) ईश्वर की पूजा सिर्फ आदत से करते हैं, अपने हृदय में वे उससे घृणा ही करते हैं: भला वह (ईश्वर) ऐसे लोगों को दुनिया में क्यों चलाता रहता है, दुनिया के बिलकुल अन्तिम छोरों तक क्यों? ऐसे लोग आदमियों को सिर्फ पेश के टूट-सा मम करते हैं, जब, रास्ते में पड़े हुए पत्थर कोई भी इनसे उठका जाता है और ऐसे में उसे कभी कभी चोट भी लग जाती है। उनके (आदमियों के) बिना भी काम चल सकता है, पर उनके सम्बन्ध में अपनी नापसन्दगी जाहिर करके उन्हें आश्चर्य में डाल देने और उनके साथ अपनी अपहमति उद्धतता-पूर्वक दिखलाने में कभी-कभी मजा भी आता है।”

गोकर्ण अपनी एक अन्य टिप्पणी में लिखते हैं: “यदि वह (टालस्टाय) मछली होते तो निश्चित रूप से उनका घर समुद्र में होता, जमीन के भीतर पड़ने वाले छोटे समुद्रों में कभी न तेरते, नदियों की बात तो जाने ही दीजिए। मीठे पाने में रहने वाली एक छोटी मछली सामने पानी में झपट-झपट कर चल रही है, वे (टालस्टाय) जो कुछ भी कह रहे हैं उसमें उसको दिलचस्पी नहीं, उनकी उसे आवश्यकता भी नहीं, उनकी शान्ति से वह भयभीत या किसी तरह प्रभावित नहीं होती। वे जानते हैं कि बहुत प्रभावकारी ढंग और योग्यता के साथ कैसे शान्त रहा जाता है—बिलकुल एक सच्चे मत्स्यासी की भाँति। यह भी है कि जो बातें उन्हें कष्ट देती हैं उनके बारे में वे बहुत बोलते हैं पर साथ ही यह भी महसूस करना पड़ता है कि ऐसा बहुत कुछ है जो कि वे नहीं बोलते। ऐसी भी बातें हैं जिसे वे किसी से नहीं कह सकते। शायद उनके कुछ विचार

ऐसे हैं जिनसे वे खुद भयभीत हैं।”

“अपने भाषणों की नीरमता के बावजूद” गोर्की ने एक और टिप्पणी में टार्लस्टाय के सम्बन्ध में लिखा है : “इम अद्भुत व्यक्ति में असीम रूप से चतुर्मुखी प्रतिभा है। आज पार्क में मास्करा के मुल्ला के साथ बातें करते हुए उन्होंने अपने को गाँव के एक विश्वासी गैवार व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया—ऐसा व्यक्ति त्रिमूर्ति के लिए अपने जीवन के अंतिम दिनों के बारे में सोचने का अवसर आ गया है।... उनकी अन्वेषण करती सी निगाह मुल्ला के चौड़े चेहरे पर स्थिर रूप से टिक गई और उनकी आँखों की पुतलियों में बहती चण्डाणा नदी रही जो लोगों को इतनी अमुविधाजनक मालूम पड़ती है। उन्होंने जीवन, आत्मा और ईश्वर के बारे में मुल्ला से बच्चों की भाँति प्रश्न पूछे और कुरान की आयतों के साथ-साथ ईसाइयों के ‘न्यू टेस्टामेंट’ तथा अन्य धार्मिक सिद्ध पुरुषों के पद भी सुनाए। दरअसल वह एक प्रकार से अस्मिन्त कर रहे थे और सो अत्यन्त अमाधारण निपुणता के साथ जो बवल एक बहुत बड़े कलाकार और मन्त से ही संभव है।”

कुछ दिनों पूर्व वे तानेयेव और स्लर से संगीत के सम्बन्ध में बातें करते हुए उसकी (संगीत की) सुन्दरता पर बच्चों की भाँति हर्ष-विभोर हो गए और कोई भी देख नकता था कि अपनी इस हर्षोत्फुल्लता में वे स्वयं आनन्द ले रहे हैं या उमे महसूस करने की उन्हें क्षमता है। उन्होंने कहा कि संगीत आत्मा की मूक प्रार्थना है।

“मूक क्यों?” स्लर ने पूछा।

“क्योंकि इसमें कोई शब्द नहीं होता। विचारों की अपेक्षा ध्वनियों में कहीं अधिक आत्मा होती है। विचार ताम्बे के सिक्कों का बटुआ है जब कि ध्वनि पूर्णतः दूषणहीन एवं भीतर से पवित्र।”

उन्होंने आगे कहा—“सभी संगीतज्ञ मूर्ख होते हैं, जो जितना भी प्रतिभासम्पन्न संगीतज्ञ होता है वह उतना ही संकीर्ण मस्तिष्कवाला होता है। और यह

एक अद्भुत बात है कि प्रायः वे सभी धार्मिक होते हैं।”

अन्य विलक्षणताएँ : भूकम्प गोर्की ने टार्लस्टाय की अन्य विलक्षणताओं के बारे में भी दिलचस्प बातें लिखी हैं।

वे एक स्थान पर लिखते हैं : “कैसी विचित्र बात है कि वे (टार्लस्टाय) ताश खेलना पसन्द करते हैं। वे पूरा मन लगा कर ताश खेलते हैं और कभी-कभी ताश खेलते हुए बहुत उत्तेजित हो जाते हैं। और वे ताश के पत्तों को अपने हाथ में इतनी घबड़ाहट से पकड़ते हैं मानो वे पत्ते नहीं बल्कि जीवित पक्षी हों।”

टार्लस्टाय ने एक बार कहा ‘मैं शराबियों को पसन्द नहीं करता पर मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ जो एक दो गिलास शराब पीने के बाद बहुत दिलचस्प हो जाते हैं, उनमें एक प्रत्युत्पन्न मति, विचारों की सुन्दरता, योग्यता और वाक्चातुरी आ जाती है जो उनमें उस समय नहीं रहती जब कि वे शराब नहीं पीए होते। और तब मैं शराब को धन्यवाद देने को तैयार हो जाता हूँ।”

टार्लस्टाय की एक मलाह यह है कि “अपनी देख-भाल करो, प्रथम और सर्वप्रमुख रूप से अपनी ही, तब तुम दूसरों के लिए भी बहुत कुछ कर सकोगे।”

एक बार टार्लस्टाय ने अपने समासमयिक, महान् रूसी कथा-लेखक चेखव से टेलीफोन पर कहा—“आज का दिन मेरे लिए बहुत ही आनन्द का दिन है। मैं बहुत खुश हूँ और चाहता हूँ कि आप भी खुश हों। विशेषतः आप! आप इतने अच्छे हैं, इतने बहुत ज़्यादा अच्छे!”

गोर्की द्वारा लिखित और संगृहीत इन टिप्पणियों से टार्लस्टाय के व्यक्तित्व पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आध्यात्मिकता में विश्वास रखने वाला चतुर्मुखी प्रतिभा वाला यह कलाकार अगर अनेक पूर्वोक्तों से पीड़ित था तो बहुत सरल और दिलचस्प होने के साथ-साथ बहुत ऊँची समझदारी से युक्त भी था।

बुद्ध का अनात्मवाद और पुनर्जन्म

भगवान् बुद्ध का समय ६०० ईस्वी पूर्व है। नम युग में उत्तर-भारत, में विभिन्न मत-मतान्तर फैले हुए थे। 'ब्रह्मजाल सुत्त' के आधारा पर उनकी संख्या ६२ है। उनमें से अधिकांश शाश्वतवाद और अच्छे-बुराई को प्रश्रय देने वाले थे। ईश्वर और आत्मा इन्हीं दो वस्तुओं को लेकर दार्शनिक तथा लौकिक क्षेत्रों में उथल-पुथल होती रही। समाधान निकालना कठिन हो गया कि आखिर ईश्वर तथा आत्मा नामक वस्तुएँ यथार्थतः हैं या नहीं। बुद्धकालीन परिस्थिति इन ६२ मतों का एक साथ प्रश्रय देने के कारण विषम हो गई। विद्वान् दार्शनिक तथा मनीषीकरण युग की बढ़ती आवश्यकता के परिहाण के लिए एक ऐसे सिद्धान्त और मत की गवेषणा में रहे जो सर्वसाधारण के अनुरूप होते हुए भी मार्गलक्षता तथा जीवन्तता का अभिविवेक रखता हो।

मनीषी बुद्ध ने अपना मत इसी समय फैलाया। उनके उपदेश ही दर्शन थे और उपदेश अपने विचारों को प्रथमतः अपने व्यक्तित्व की कसौटी पर कसा और तब कहीं, खरा उतरने पर, दुनिया के सम्मुख उन्हें प्रस्तुत किया। ईश्वर तथा आत्मा संबंधी अपने विचार को उन्होंने कुछ इस ढंग में रक्खा कि लोग उन्हें अनीश्वरवादी और अनात्मवादी कह कर पुकारने लगे। वस्तुतः बुद्ध में कितना ज्ञान निहित था यह स्वयं बुद्ध ही कह सकते थे। जब उन्हें ऐसी आवश्यकता पड़ी अपने ज्ञानकोष के कण को बिखेरते गए। उनका दर्शन एक ऐसी प्रमाणावस्था के लिए हुआ कि उसका तत्व अतः पुर-पुरन्धियों से लेकर श्वपाक-चाण्डालों और जनपद-लुण्ठकों तक के रोम-रोम में भोग गया था। भगवान् दास के अनुसार 'इशोपनिषत्' के निम्नलिखित श्लोक में दर्शन शब्द की समुचित परिभाषा दी जाती है और बुद्ध के शर्दन से इसका स्वरूप पूर्णशतः साम्य रखता है :

“हिमयमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्
तत्त्वं पूषन्नपात्रेण सत्यधर्माय 'दृष्टये'”

बुद्ध ने अपने इस स्वरूप का निदर्शन 'सम्मा

दिट्ठि' में कराया है।

अनित्य, अनात्म और दुःख बुद्ध-दर्शन के मूलभूत आधार हैं। इसी पर उनकी 'मज्झिमा पटिपदा' 'पटिच्चममुत्पाद' तथा 'अरिय अट्ठङ्गिक मग्ग' का सिद्धान्त न्यस्त है।

भगवान् बुद्ध का कहना है कि जगत् की सभी वस्तुएँ अनित्य हैं अर्थात् विनाशधर्मा हैं। इनमें स्थायित्व नामक कुछ भी नहीं है, ये क्षण-क्षण परिवर्तनशील हैं; एक क्षण के लिए भी ये स्थिर नहीं हो सकतीं, नहीं तो सृष्टि और विनाश का क्रम ही टूट जाएगा। प्रकृति का स्वरूप ही बदल जाएगा। प्राणी के अन्दर ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिस हम आत्मा की संज्ञा में अभिहित कर सकें। उपनिषदों की आत्मा “अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः। न हन्यते हन्यमाने शरीरे” (गीता अ० २) का प्रतिरूप किसी भी प्राणी में नहीं है; अतः आत्मा का सर्वथा अभाव है। संपार में दुःख व्याप्त है। प्राणी इस दुःख में बारम्बार पड़ता है। इससे आत्यन्तिक निवृत्ति ही बुद्ध के दर्शन का मारतत्व है।

अतः भी वस्तुएँ हैं सभी छोटी-छोटी वस्तुओं का संचालन। अपने में वे पूर्ण नहीं हैं अतः संस्कृत धातु हैं। मनुष्य का अंग विभाजन किया जाए तो इसके पाँच खण्ड होंगे : (१) रूप=शरीर में या बाहर जो कुछ भी दृश्यमान है Matter (२) वेदना=सुख, दुःख तथा असुख-अदुःख इन त्रिविध वेदनाओं का अनुभव (३) संज्ञा=किसी वास्तविक वस्तु का ज्ञान (४) संस्कार=पुनर्जन्म के बर्तों से प्रभावित प्रवृत्तियाँ (५) विज्ञान (Consciousness)=अहं तथा इन्द्रिय-जन्य रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का ज्ञान। इन पाँचों को हम पुन दो भागों में विभाजित कर सकते हैं : (१) नाम (Mund) जिसमें अन्दर वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान हैं तथा (२) रूप (Matter)। इस प्रकार विश्लेषण करने पर स्पष्टता प्रतीत होता है कि शरीर के अन्दर आत्मा नामक वस्तु का स्थान नहीं है। केवल इन पाँचों के संचालन का स्वरूप ही हमारा यह जीवन्त

शरीर है। नाम रूप की समष्टि ही मनुष्य के क्लेशवर के रूप में विद्यमान है।

अनात्मवाद की देशना बुद्ध के मन्तव्यों में से एक है। उनके अनुसार रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान या जगत् की सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, जो अनित्य हैं वे दुःखप्रद हैं और जो दुःखप्रद हैं वे विपरीतगामी हैं। नसके सम्बन्ध में ऐसा सोचना अनुचित होगा कि वह मेरा है, वह मे हूँ, वह मेरी आत्मा है। सम्यक् ज्ञान से हमें यह ज्ञान लेना चाहिए कि जो कोई भी रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान, अतीत, अनागत, प्रत्युत्पन्न, अपने शरीर में का या शरीर के बाहर का, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, उत्कृष्ट, निकटस्थ या दूरस्थ है वह सब मेरा नहीं है, वह मे नहीं हूँ, वह मेरी आत्मा नहीं है [द्रष्टव्य-‘महावरणा’ (वि० पिटक) का अनन्तलक्षण सुत्त]।

यद् अनात्मवाद का सिद्धान्त जिसे भगवान् ने प्रतिपादित किया कितना मरल है, कितना बोधगम्य है! इममें तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं :

(१) रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान को आत्मा समझना उचित नहीं क्योंकि ये बाधाओं से ग्रस्त हैं, रोग के अधीन हैं। (२) रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान अनित्य हैं (क्षण-क्षण परिवर्तनशील हैं) अतः दुःख है, अतः आत्मा नहीं हो सकते। (३) जब ये आत्मा नहीं हैं तो इनसे पृथक् रहना चाहिए, विरक्त होना चाहिए और इस विराग का मात्सरिकार करक ‘कर्त करणीय’ का भाव अपनाना चाहिए।

फिर भी यदि कोई हठ पकड़ ले कि बताइए शरीर मे आत्मा भिन्न है या नहीं तो बुद्ध कहेंगे : ‘मे इस ऊहापोह में नहीं पड़ता क्योंकि इससे मनुष्य जाति का कल्याण नहीं होगा’ या नहीं तो फिर मालुङ्का पुत्त के दस प्रश्न पूछे जाने के समान ‘अव्याकृत’ समझ कर मौन हो जाएंगे।

विभिन्न विद्वानों ने बुद्ध के इस मौनावलम्बन पर विभिन्न पमीचाएँ की हैं। कीथ और पुमों जैसे युरोपीय विद्वानों ने तो इसमें बुद्ध की अज्ञानता को दर्शाया है। इसी विद्वान् चेरवास्की के मतानुसार तो यह कि बुद्ध के समय सम्भवतः ऐसा प्रचलन रहा हो कि निषेधात्मक उत्तर देने के बजाय मौन रह जाना श्रेयस्कर है। तृष्णीमभाव के द्वारा सत्य की व्याख्या का रहस्य शंकराचार्य के इस प्रसिद्ध श्लोक में हमें झलकता है :

“चित्रं वटतरोर्मले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु च्छिन्नसंशयाः”

इस स्थल पर मैं तो योगी अरविन्द के शब्दों में ही सत्य की गवेषणा कहूँगा :

“A lonely Absolute negated all :
It affected the ignorant world from
solitude
And drowned the soul in its everlasting
peace”

(Savitri 11. 7. 6 : Nirvana)

इन सभी विवेचनाओं के पूर्व हमें ज्ञान लेना आवश्यक है कि उस युग में आत्मवादियों की आत्मा का स्वरूप कैसा था। पालि साहित्य में आए इसके एक दो नमूनों का उद्धरण यहाँ पर अपेक्षित है।

(१) आत्मा ‘बन्ध्य, कूटस्थ तथा नगरद्वार पर खड़े स्तम्भ के समान है’ (वज्रको कूटट्टो एसिकट्ठायी ठितो)।

(२) यह ‘जड़, चार महाभूतों की बनी हुई, माँ-बाप से उत्पन्न है। शरीर के पश्चात् यह छिन्न होती है, इसका विनाश होता है। मृत्यु के बाद यह नहीं रहती’ (रूपी चातुम्महाभूतिको, मातापितृसंभवो, कायस्म भेदा वच्चिज्जति विनस्मति; न होति परं मरणा)।

(३) यह जो मेरी आत्मा अनुभव करने वाली तथा अनुभव होने के योग्य है और जहाँ-जहाँ अपने भले बुरे कर्मों के विपाक को अनुभव करती है वहाँ-वहाँ यह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अपरिवर्तनशील है और अनन्त वर्षों तक वैसी ही रहेगी’ (यो मे अयं अत्ता वेदो वेदेत्थो, तत्र-तत्र कल्याण-पापकानं कम्मानं विपाकं पटिसंवेदेति, सो खो पन मे अयं अत्ता निच्चो, ध्रुवो, सरस्वतो, अवपिरिणामधम्मो, सस्मितसमं तथेव ठस्मति ति)।

इनमें से पहला और तीसरा शाश्वतवादी दृष्टि है जिसके अनुसार आत्मा का क्षय कभी नहीं होता क्योंकि यह शाश्वत है। दूसरा अच्छेदवादी दृष्टि है। इसके अनुसार शरीरांत के बाद आत्मा का अच्छेद अर्थात् नाश हो जाता है। गीता का ‘न हन्यते हन्यमाने शरीरे’ शाश्वतवाद पर आधारित है। बुद्ध ने इन दोनों वादों से अपने को बचाया और नैरात्म्यवाद का उपदेश दिया।

(४) 'ज्ञानदोषोपनिषत्' में तो आत्मा को एक ऐसा पक्षी माना गया है जो रस्सी से बंधा चारों दिशाओं में उड़ता है और वहाँ न रह सकने के कारण बन्धन में ही आ जाता है। (स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्नयायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत्...।)

बुद्ध ने इन समस्त विचारों को 'पूर्ण' मूर्खता का विषय' (परिपूरु बालघम्भो) कहा है। किसी भी वस्तु का जर्जी-जर्जी खोल कर देखने पर पञ्चस्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) के व्यतिरिक्त कोई अन्य वस्तु हमें दृष्टिगोचर नहीं होती तो फिर हम यह कैसे मान लें कि उसमें आत्मा नामक तत्त्व विद्यमान है? भदन्त नागसेन के मतानुसार 'परमार्थतो पनेत्थ पुगलो नूपलब्धमिति' अर्थात् वास्तव में 'पुद्गल' या 'जीव' नामक कोई वस्तु नहीं है; और भिन्नुणीप्रवरा वजिरा के शब्दों में :

“यथा हि अङ्गसम्भारा होति सद्दो रथो ति एवं खण्डेषु सन्तेसु होति सत्तो' ति समुत्ति”

अर्थात् जिस प्रकार विभिन्न अङ्गोपाङ्ग के सम्मिश्रण को 'रथ' की संज्ञा दी जाती है उसी प्रकार इन पञ्चस्कन्धों के संघात से भरे मत्त्व या प्राणी का प्रतिष्ठापन होता है। कितनी तथ्यता से भरे ये वचन हैं। बुद्ध के उलम्भे मत यहाँ अच्छी तरह सुलभ-गए है।

इस क्षणभंगुर संसार में निर्वाण अर्थात् असंस्कृत धातु को छोड़ सभी वस्तुएँ विनाशधर्म तथा प्रातक्षण परिवर्तनशील हैं। हमारी यह काया भी क्षणमात्र के लिए स्थिर नहीं है। तो फिर आत्मा नामक शाश्वत और स्थिर तत्त्व इस अस्थिर और परिवर्तनशील काया में कैसे रह सकती है? इस परिस्थिति में आत्मा का न होना एक मूर्ख भी सोच सकता है।

‘अतदीपा भवथ अत्तपरणा अनञ्जवरणा’ (आत्म-दीप बनो अपने आप की शरण में जाओ किसी दूसरे की नहीं) जैसे स्थलों पर डा० राधाकृष्णन् जैसे विद्वान् ने प्रभवश 'अत्त', को 'आत्मा' या 'आत्मा' समझ कर बुद्ध क आत्मवादी होने की शंका की है :

“When Buddha asks us to have the self as our light, the self as our refuge surely he is referring not to the transitory constituents, but to the universal

spirit in us” (Gautam the Buddha. P. 40)

यहाँ पर अत्त का अर्थ आत्मा कदापि नहीं हो सकता। तब तो चूलमालुक्यपुत्त और बावारि जैसे मेधावी ब्राह्मण का शिष्य उपसीव माणव बुद्ध के घर चढ़ आते और कहते 'वाह भगवन्! हम लोगों ने जब आत्मा के बारे में प्रश्न किया तो कभी मौन रह गए और कभी 'आकिच्चञ्ज' का उपदेश दे गए। अभी अपने शिष्यों को उसी आत्मा की शरण जाने को कहते हो, शर्म नहीं आती!!” तब तो बुद्ध के लिए भ्रमेला उठ खड़ा होता और उसी समय उन्हें एक नई शरीर-मीमांसा करनी पड़ती [दृष्टव्य—बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन; पृष्ठ ४५७]। यह तो उसी प्रकार होता जैसा गीता में अर्जुन ने कहा है। ‘व्यामिश्रेणैव वाक्येन बुद्धि मोहयसीव मे’।

किन्तु वास्तविकता तो यह है कि इस अत्त का विश्लेषण तो बुद्ध ने स्वयं कर दिया है—

“कथं, भो आनन्द, भिक्खु अतदीपो होति अत्त-सरणो अनञ्जवरणा ति? इधानन्द, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति, वेदनासु वेदानुपस्सी विहरति, चित्ते चिंतानुपस्सी विहरति.... एवमेव सो, आनन्द, भिक्खु अतदीपो होति अत्तपरणो अनञ्जवरणा ति”। काय, वेदना, चित्त और धर्म इन चार स्मृति प्रस्थानों की भावना ही प्राणियों की विशुद्धि का एकमात्र मार्ग है और यही है बुद्ध के अनुसार अतदीप का अर्थ।

अब तक मैंने अनात्मवाद का विवेचन किया। किन्तु इतना सब होने पर भी यह अनात्मवाद मही तब है जब वह पुनर्जन्म कग के दिखावे अन्यथा आत्मवाद पुनर्जन्म को तो मानता ही है। वास्तव में बौद्ध-दर्शन की एक मात्र विशेषता यही है कि उसने आत्मा को स्थान न देते हुए ही पुनर्जन्म को स्वीकार किया है। किन्तु प्रश्न उठता है कि तो फिर पुनर्जन्म किसका होता है? अच्छे बुरे कर्मों का फलाफल किस पर पड़ता है? ‘मे’ गढ़ ‘अहं’ नामक वस्तु क्या है? प्रश्न की ऐसी जटा को विजटित करने के लिए हमें बुद्ध का कर्मवाद और प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चमसुत्पाद) के सिद्धान्त को समझना होगा। प्रतीत्यसमुत्पाद को समझने से अनात्मवाद स्पष्टतर हो जाएगा।

प्रतीत्यसमुत्पाद का शाब्दिक अर्थ है—किसी वस्तु की उत्पत्ति होने पर अन्य वस्तु की समुत्पत्ति। इसे

हम सापेक्षकारणतावाद भी कह सकते हैं। शब्दों में इसकी व्याख्या इस प्रकार है 'इमस्मिं सति इदं होति, इमस्म उपादा इदं उत्पज्जति, इमस्मिं अस्सति इदं न होति, इमस्म निरोधा इदं निरुज्जति।' अर्थात् इगके होने पर यह होता है, इगके उत्पन्न होने पर यह उत्पन्न होता है, इगके न होने पर यह नहीं होता है, इगके निरोध होने पर यह निरुद्ध हो जाता है। यह कार्य कारण सिद्धान्त इगके अङ्गों पर इम प्रकार लागू है कि एक के होने पर दूसरा अवश्य होगा और एक के अस्त होने पर दूसरा भी अवश्य निरुद्ध हो जायगा। इसके बारह अङ्ग ये हैं—अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरामरण-शोकपरिदेवदुःखदोर्मनस्योपायास। बुद्ध का कहना है कि इसके पहले भी कोई जन्म अवश्य था जिसमें प्राणी ने अज्ञान (अविद्या) वश बहुत से अच्छे बुरे कर्म (संस्कार) किए। उस कर्म के विपाक के फलस्वरूप इस जन्म को प्रदण करने गर्भ में वह आया (विज्ञान)। इसके बाद उसमें 'नाम' और 'रूप' का निर्माण होता है तथा उसी के आधार पर छ इन्द्रियों (षडायतन) का धीरे-धीरे ममावेश होता है। मनुष्य में इन्द्रियाँ होते ही उसमें बाह्य जगत् के साथ 'स्पर्श' का तत्त्व स्वतः आ जाता है जिसके फलस्वरूप वह 'वेदना' का अनुभव करक अपने में 'तृष्णा' को प्रथम देता है और 'तृष्णा' के आने से सुखप्रद वस्तुओं को अपनाए रहने की प्रबल आकांक्षा (उपादान) उसके पीछे पड़ जाती है। इस प्रकार पुनः अच्छे-बुरे सभी कर्मों को करते हुए वह संसार में जीवन (भव) बिताने लगता है। इन कर्मों के विपाक स्वरूप उसे पुनः दूसरे जन्म (जाति) का आश्रय प्रदण करना पड़ेगा जो कि उसका पुनः ज्ञय, मृत्यु रोना, पीटना आदि से पीड़ा करता रहेगा।

इस प्रकार इस सिद्धान्त के द्वारा अतीत, वर्तमान और अनागत इन तीन जन्मों का लेखा-जोखा मिलता है। किन्तु बुद्ध ने इन तीन जन्मों में आत्मा का दामन कहीं नहीं थामा है। मनुष्य इस भव-चक्र में तब तक के लिए घूमता रहता है जब तक उसका मूल 'अज्ञान' नष्ट न हो जाए जो कि तृष्णा की उत्पत्ति का कारण है।

कर्मवाद का स्पष्टीकरण इस प्रकार हो सकता है कि बुद्ध ने अपने दर्शन में कर्म को प्रमुख स्थान दिया

है। कायिक, वाचिक और मानसिक कर्मों में से मानसिक कर्म पर ही सर्वाधिक जोर दिया गया है। मानसिक कर्म को हम चेतना (Volition या Intention) कह सकते हैं। "चेतनाहं, वो भिक्खवे, कम्मं वदामि ! चेनयित्वा हि कम्मं करात कायिकं वाचिकं वा।" अर्थात् भिक्षुओ ! चेतना वो ही मे कर्म की संज्ञा देता हूँ क्योंकि चेतना से ही अनुपाणित होकर मनुष्य शरीर से या मुख से कर्म करता है। बुद्ध का यह भी मत है कि हम जो कुछ भी अच्छे या बुरे कर्म करते हैं उसी के अनुरूप हमारे आगामी जीवन की भित्ति तैयार होती है। इस जीवन के कर्मों का विपाक अगले जीवन के रूप में होता है।

हमारे अन्दर एक चिन्तसन्तति (Thought-moments) है जो अनादि काल से अविच्छिन्न धारा के रूप में बहती चली जाती आ रही है। जिस प्रकार सरिता की प्रवाहमान धारा यद्यपि एक रूप दिखलाई पड़ती है फिर भी उसमें कितने बुलबुले बनते और मिटते चले जाते हैं, ठीक उसी प्रकार हमारी चिन्तसन्तति रूपी धारा में बुलबुले रूपी असंख्य जीवन बनते और बिगड़ते हैं। जिस प्रकार सिनेमा के एक रील में कितने छोटे-छोटे फ़िल्म के टुकड़े रहते हैं उसी प्रकार हमारी चिन्तसन्तति रूपी रील में जीवन-मरण रूपी फ़िल्म जुटे हुए हैं। तृष्णा रहने पर नानाविध कर्मों का विपाक उसमें गत्यात्मकता भरती चली जाती है। अतः तृष्णा का सर्वथा ज्ञय होने से ही हमारे कर्मों का विपाक होना रुक जाएगा और फिर इस 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननीजठरे शयनं' से हम छुटकारा पा जाएंगे।

स्थविर भदन्त नागसेन के शब्दों से इस पुनर्जन्म के पचड़े को प्रशस्त रूप में सुलझाया जा सकता है :

"भन्ते ! जो उत्पन्न होता है वह वही है या दूसरा ?" स्थविर—"न वही है न दूसरा ही"।

"कृपया उपमा देकर समझाइए"।

स्थविर—"महाराज ! जब आप छोटे बच्चे थे, खाट पर उत्तान सोए रहते थे सो क्या आप इतने बड़े होकर वही हैं ?"

"नहीं भन्ते ! अब मैं दूसरा हो गया"

स्थविर—"महाराज ! यदि आप वही बच्चे नहीं हैं तो अब आपकी कोई माँ भी नहीं है, तो कोई

पिता की नहीं है, कोई शिक्षक भी नहीं है...। तब तो महाराज जो शिल्पों को सीखता है वह दूसरा और जो सीख कर तैयार हो जाता है वह दूसरा होगा ? दोष करने वाला दूसरा होगा और किसी दूसरे के ही हाथ-पैर काटे जाएंगे ?”

“नहीं भन्ते ! किन्तु इससे आप क्या दिखाना चाहते हैं ?”

स्थविर—“महाराज ! मैं बचपन में दूसरा था और इस समय बड़ा होकर दूसरा हो गया हूँ, किन्तु वे सभी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ इस शरीर पर ही घटने से एक ही में ले ली जाती हैं ।”

स्थविर पुनः बोले कि ठीक इसी तरह किसी वस्तु के अस्तित्व के सिलसिले में एक अवस्था उत्पन्न होती है, एक लय होती है—और इस तरह प्रवाह जारी रहता है । एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर नहीं होता क्योंकि एक के लय होते ही दूसरी उत्पन्न हो जाती है । इसी कारण “न च सो न च अज्यो, पुरिमविज्वाणे पच्छिमविज्वाणे सज्जहं गच्छतीति” अर्थात् जीव न वही है और न दूसरा ही । एक जन्म के अन्तिम विज्ञान के लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है (द्रष्टव्य मिच्छिन्द-प्रश्न-हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ५०) ।

किन्तु फिर भी शंका बनी रहती है कि आखिर जन्म कौन प्रदण करता है । इसका उत्तर यह है कि नाम और रूप जन्म प्रदण करता है किन्तु यही नाम और रूप नहीं । मनुष्य इस नाम-रूप से पाप का पुरय करता है, उस कर्म के करने से इसका नाम रूप जन्म प्रदण करता है, (तेन कम्मेन अज्ज नाम-रूप

परिसन्दहत) ।

एक और स्पष्ट उदाहरण हम इस प्रसंग में दे सकते हैं कि तालाब में एक डेला फेंकने पर जिस प्रकार एक के बाद एक वृत्तकार जल में से निकल तालाब के अंतिम छोर तक तब तक चलते रहते हैं जब तक कि डेले द्वारा सम्पादित कम्पन जल में विद्यमान रहता है ठीक ऐसे ही एक नाम रूप से दूसरा नाम-रूप भी स्वतः स्फुरित होता रहता है तब तक जब तक कि तृष्णा या अज्ञान द्वारा सम्पादित कर्मों के विपाक का अमर उस पर पड़ता रहता है । जिस प्रकार उन वृत्ताकारों का आधार तालाब का जल है उसी प्रकार इन नामरूपों का आधार चित्त-मन्तति है जो अनादिकाल से अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान है ।

इतना होने पर भी इस अनात्मवाद तथा जन्मान्तर का एक आशिक रूप ही हमारे सामने आ पाया है । सत्य का निरूपण बाह्य उपादानों से जानने के बदले स्वयं प्रत्याभिज्ञान और अनुभव करने से होता है । कर्म तथा इसके अपरिहार्य विपाक तथा अनित्य, अनात्मक और दुःख-तत्त्व को नित्य-नैमित्तिक जीवन में निरखने-परखने से ही पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त मस्तिष्क में पैठेगा, अन्यथा नहीं ।

येर मोगल्लिपुत्त ।त्तस्स से लेकर ज्ञानातिलोक तक और अश्वघोष से लेकर राहुल माङ्गल्यायन तक के विद्वानों ने जिम विषय का प्रतिपादन सहस्रों ग्रन्थ लिख कर किया गया है उसे ही मैंने इन चन्द पृष्ठों में निचोड़ने का दुस्साहम किया है । विद्वान् समीक्षक और जिज्ञासु पाठक मेरे इस दुस्साहम को यदि तिलमात्र भी उपयोगी समझें तो मेरा प्रयास सार्थक होगा ।

ई० १५/१४ मानन्दिर,
दशाश्वमेध,
वाराणसी (उ० प्र०)

—आचार्य विश्वनाथ वाजपेयी

उस झूठ पर विश्वास करना सुगम है जिसे कि एक व्यक्ति हजार बार सुनता है परन्तु उस सत्य पर विश्वास करना कठिन है जिसे कि पहले कभी किसी ने न सुना हो ।

—रोबर्ट जिंड

डिंगल-काव्य में वीर और शृंगार रस का अद्भुत मेल

कविता का प्रमुख उद्देश्य रस की अनुभूति कराना है। माहिल्य शास्त्रियों ने नव रसों का ऐसा रमायन आयोजित किया है जिसका पान कर पाठक या दर्शक लोकोत्तर आनन्द का अनुभव करता है। डिंगल-माहिल्य का प्रारम्भ से ही विशेष महत्व रहा है। हिन्दी के आदिकाल का बहुत कुछ स्वरूप तो उसी के द्वारा निर्धारित किया जाता है। डिंगल राजस्थान की भाषा है और राजस्थान की धरती वीरप्रसवा रही है। कर्नल टॉड के शब्दों में "There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopylae, and scarcely a city that has not produced its Leonidas" राजस्थानी कवि तलवार और तूँझका के धनी रहे हैं। राजस्थान माता की मूर्ति यदि बनाई जाए तो उसके एक हाथ में तलवार और दूसरे में वीणा देना ठीक होगा।

डिंगल-भाषा स्वभाव से ही ओजप्रधान होने के कारण वीर रस के लिए विशेष उपयुक्त है पर यह नहीं माना जा सकता कि वह शृंगार रस के अनुपयुक्त है। पृथ्वीराज ने 'वैलि-किमन रुकमणी' में शृंगार रस का सुन्दर वर्णन कर यह प्रमाणित कर दिया है कि डिंगल-भाषा जितनी वीर रस के अनुकूल है इतनी ही शृंगार रस के लिए उपयुक्त। यह सही है कि डिंगल-कविता का तीन चौथाई भाग वीर रस से ओत-प्रोत है। इसका कारण यही है कि ये कवि वीर-भूमि में पैदा हुए थे, वीरता के वातावरण में पले थे और स्वयं योद्धा थे। हिन्दी और संस्कृत की वीररसपूर्ण कविताएँ रणांगण की कटाकटी एवं कोलाहल से दूर किसी शान्त वातावरण में लिखी गई थी, इसीलिए उनमें वह मूर्तिमत्ता और वास्तविकता नहीं है। केवल बाहरी हावभावों का वर्णन है, हृदयस्थ गम्भीरतम भावों का मनोविश्लेषण नहीं। डिंगल की वीररस की कविता में एक विशेषता और भी पाई जाती है। संस्कृत के कवियों ने स्त्रियों को शृंगार रस आश्रय-आलम्बन के रूप में ही विशेष करके ग्रहण

किया है और वीररस के लिए अनुपयुक्त समझ कर उनकी बड़ी उपेक्षा की है। वे दिन रात अपने चरित्र-नायकों के पीछे ही लगे रहे और कभी एक क्षण के लिए भी पीछे मुड़ कर यह न देखा कि युद्धार्थ गए हुए वीरनायक की अनुपस्थिति में उनकी वीरपत्नी की घर पर क्या दशा है। लेकिन डिंगल के कवि उन्हें न भूले।^२ यही कारण है कि डिंगल कवियों ने ऐसी कविताओं का सृजन किया जिनमें वीर और शृंगार दोनों रसों का अद्भुत मेल हो गया है।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह माना गया है। उत्साह को उत्तेजित करने में शृंगाररस के स्थायी भाव रसिता का भी विशेष हाथ रहता आया है यही नहीं वीर गाथा काल में तो शृंगार-पञ्च की प्राप्ति के लिए ही वीर भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। संगीता के रूप पर मोहित होकर पृथ्वीराज ने रणभेरी बजाई। 'जाहि की बिटिया सुन्दर देख, ताहि पै जाए धरे हथियार' के पीछे संभवतः यही दर्शन है। और इसी का फल है कि शृंगार और वीर दोनों रस हाथ से हाथ मिला कर बड़े हैं।

चन्द्रबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' के अन्तर्गत 'पद्मावती-समय' में इसकी झलक दी है। पद्मावती का रूप चित्रण—

“मनहुं कला ससिमान, कला सोलह सो बलिय”

बाल बेस ससिता समीप, अम्रित रस पिबिय कर गौरी और पृथ्वीराज के युद्ध का वर्णन किया है। दूत से सन्देशा सुनते ही पद्मावती इतनी प्रसन्न होती है कि कामदेव की सेना-सी भज जाती है :

“सन्देश सुनत आनन्द नैन,
उमगीय बाल मनमथ सैन।
तन चिटक चीर डायों उतारि,
मज्जन मयंक नव सत सिंगार,

भूषण मंगाय नख-शिख भूप,
 मजि सेन मनो मनमध्य भूप ।”

मेना के सजने के मूल में वीर भावना काम कर रही है जिसका आधार प्रिय-मिलन है ।

वीर और शृंगार रस को एक ही छन्द (कुण्डलिया) में गूँथने का कमाल दिखाया है । ईसरदास बारहठ ने अपनी लोकप्रिय कृति ‘हालौंभालौं रा कुण्डलिया’ में । इस कृति में हलवद-नरेश भाला रायसिंह और धोल राज्य के ठकुर हाला जमाजी का युद्ध वर्णन है । जमाजी की स्त्री भाला रायसिंह को कई प्रकार से सम्बोधित कर :

‘धीरा धीरा ठाकुरौं गुम्भर किमौं म जाह,

महुंगा देखी भुंषा जै धरि होसी नाह”

अपने पति के वीरत्वव्यंजक व्यक्तित्व का उद्घाटन करती है । यही नहीं वह स्वयं अपने पति को ललकारती है कि हे विकट और निरशंक बोलने वाले अब नींद से उठ क्योंकि—‘घोड़ों पाखर धमधमी, सीधूँ राग हुवाह’ और पति ने उठ कर ऐसा घमासान युद्ध किया कि पत्नी उसकी रक्त रंजित कला-इयों पर न्योछावर होती है “बहरि । मरै कलाइयों रुहिर रत्तइयों” सिंह के केश, सर्प की मणि, बहा-दुरों के शरणागत, सती के स्तन और कृपण का धन मरने पर ही हाथ लगते हैं :

“केहरि केस, भमंग मणि, मरणाई सुहड़ाँह

सती पयोहर, कृपण-धन, पइसी हाथ सुवाँह”

नायक और नायिका जब क्रीड़ा करते थे तब नायक के कठोर कुंवों का स्पर्श कर घबड़ा जाता था । पर मारु-बाजा बजते ही नायक ने रण क्षेत्र में प्रवेश किया वहाँ भालों के प्रहार, बाणों की बौछार और गजदन्तों की चोटें सहन करता-करता अपनी वीरता प्रदर्शन करता रहा । नायिका ने फूल से कोमल नायक को रणोन्माद में ब्रज से भी कठोर देखा तो वह कह उठी :

‘सेल घमोषा किम सखा, किम सखा गजदंत

कठिन पयोधर लागताँ, कममसतौ लू कंत”

वीर और शृंगार से मिली-जुली ऊँची अनुभूति और क्या हो सकती है ? क्या इस कोटि का

पथ और किसी साहित्य में मिल सकेगा । उच्च कोटि का शृंगार है जो नायक को वीर भावों से विरत नहीं करता बल्कि उसके हाथों की तलवार को और उसके सीने को सौगुना बढ़ा देता है । अद्भुत वीरत्व है जो मादकता और विलासिता के घूँट पीकर भी गरल को पचाने की क्षमता रखता है । इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति सूर्यमल्ल मिश्रण के निम्न दोहे में है :

“करइ कुचनूँ भाखता, पबवा हंरी चोल
 अब फूलाँ जिम आग मे, सेलाँ री घमसैल”

रूपको के माध्यम से भी दोनों रसों की मिली-जुली अनुभूति ईसरदास ने कराई है :

“सिणगारी मलाह सँ विसकामणि बरियाम
 वीर आई हाला वरण करण महा जुध काम,
 काम संग्राम की-हाम जुध कामणी
 घणा नर जोवती भोमि आई घणी,
 महाबल धवलगा माहि वरमाल तूँ
 मवल घब कइतलौं घणा सलाह तूँ” ॥२३॥

भावार्थ : युद्ध के महान् कार्य करनेवाले हे हाला (जमाजी) जिरह बख्तर से सुसज्जित (भाला रायसिंह की सेना रूपी) विष कथा से, जो तुझ से विवाह करने आई है, व्याह कर । युद्ध कार्य की इच्छुक सेना-रूपी यह कामिनी अनेक वीरों को देखती हुई तेरी भूमि पर पहुँची है । हे हर धोल के महाबली पुत्र ! भालाओं की जिरह बख्तर में बहुसज्जित सबल सेना रूपी विष-कन्या की वरमाला को तू ग्रहण कर अर्थात् उसे हरा कर विजय वैजयन्ती पहन ।

—मोतीलाल मेनारिका

कितने वीर दर्प से परिपूर्ण भाव है । रणभूमि ही स्वयंवर के लिए रंगभूमि बन गई है । पुष्पवाटिका का कोमल प्रसंग यहाँ नहीं, यहाँ तो सिर देकर सौदा करने की होश है और इसीलिए पौरुषयुक्त दृष्टि जमा कुंवारी सेवा रूपी कामिनी को व्याहने के लिए युद्ध रूपी तोरण की ओर चला रहा है और भुजाओं पर मारी ‘रिस्क’ (Risk) उसने ले रखी है :

“चढि पोरिस वर सोह चढि चढि रिण तोरणि चालि
 कुंवारी घब कइतलौं भूँस भार भुज भालि”

नायिका ने पति के सुन्दर कवच को देख कर चवरी ही में जान लिया कि उस (पति) का सिर कट जाने पर भी धड़ लड़ता रहेगा और उसके प्रहारों से हाथी तक लुढ़केंगे पर वह मुश्किल से भिरेगा :

“मे परशुती परखियो सुरति पाक सनाह
घड़ि लड़िसी गुड़िसी गयंद नीठ पडेसी नाह”

और अब तो नायक-नायिका का मिलन अवसर आ रहा है। इतनी विकलता है कि आवेग रुक नहीं सकता। कंचुकी के बन्धन अलग-अलग हो गए (करिग खग वाहती जुवा जूयण कमण) और वह यश तथा यौवन में मतवाला जमा सेना रूपी विष कामिनी के साथ अंग से अंग मिला कर महायुद्ध रूपी पलंग पर सो गया :

“पिलंगि महारिण पौडियो,
कालो भलो कहाय
जम जोबण साजै जसो,
मणिमथफोज मल्हाय
मल्होवण फोज विषकामणी मानियो,
इसो वीठो न करौ बौंद अहवानियो
अभंग जमवन्त जुधि,
काजि कीर अंगोअंगी
पौडियो घडा पौडाय, चौरंगि-पिलंगि ।”

कितना विराट् रूपक है। सेना और कामिनी का गीतकालीन विलासिता इसकी पवित्रता को छू नहीं सकती, वच्छृंखल उन्माद वीर भावों को दबा नहीं सकता। पति की मृत्यु पर (वियोग पर नहीं) तिसदिन नैन नहीं बरमते, शरीर घड़ी का पेडुलम नहीं बनता, अंगुलियों की मुद्रिका बाहों में नहीं आती बल्कि पग में मेंद्री का रंग लिए, हाथ में नारियल का मंगल लिए, अधरों पर मिलन की मुस्कान लिए, हृदय में प्रेम का आवेग लिए पत्नी उवाला का शृंगार करती है, जीवन को जौहर दिखाती है और :

“सूरातन सूरों चढ़ै, सत सतियां समदोय ।
आड़ी धारां उतरे, गणे अनल नैं तोय ॥”

—बांकीदास

की भावना को चरितार्थ करती है। ‘मार कर मरना सरल है, उसमें बदले का एक नशा होता है जो अपने चारों ओर के खतरे को नहीं देखता और जो खून पीने को नतावला है पर हँसते हँसते, अपनी इच्छा से, जल-जल कर मरना ! इसमें त्याग की सीमा है ।’

राजस्थान की वीर पत्नी भी रीझती है पर ‘मोर-मुकुट कटि-कावनी’ पर नहीं, मुरली की मनोहर तान पर नहीं (फूलों से लदी सेज पर नहीं) बल्कि उस पति पर जिसकी मूँछ हवा में फड़फड़ा रही हैं, और भालों पर सोता हुआ भी जो शत्रुओं को ललकार रहा है :

“मूँछों बाय फुरकिया, रसण सबूके दंत ।

सूतो सैलां धौ करै हूँ बलिहारी कंत ॥”

सूर्यमल्ल मिश्रण ने अपनी राठवीय कृति ‘वीर मतसई’ में शृंगार-वीर भाव की ओजमयी धारा प्रवाहित की है। राजपूत महिला का पति रण-भूमि में गया है इधर उसे पति की याद आ रही है पर वह नहीं चाहती कि वह भाग कर लौट आए। संयोग से वह देखती है। कि उसका पति तो घर की ओर भाग आ रहा है। अब उसके दुःख का क्या कइना ? कायर पति को वह सामने खड़ा देख कर कहती है :

“की घर आवे ये कियो, हणियां बलती हाय ।

धण धारे घण नेहबै, लीघो बेग बुलाय ।

हाय घर आकर तुमने क्या किया ? यदि मैं जाते तो मैं तुम्हारे साथ सती होती। इस पर पति कहता है—प्रिये ! तुम्हारा प्रेमाधिक्य ही मुझे शीघ्र बुला लाया। पत्नी पति को चाहती है पर कायर पति को नहीं, ऐसे पति को नहीं जो युद्ध से भाग कर घर आ जाए। और अगर आ गया तो वह स्पष्ट कह देती है कि सिरहाने के लिए तकिया भले ही मिल जाए, पर पत्नी की भुजा तो फिर नहीं मिलेगी :

“कंत लखीजै दोहि कुल, नथी फिरंती छौंद
मुड़ियां मिलसी गीदंबो, बले न धण री बाँद”

यही नहीं उसे तो अब ओछी कंचुकी (सोभाग्य

विह) में हाथ दिखाते हुए भी लज्जा आती है। और आश्चर्य होता है कि किस प्रकार उसके पति उन हाथों से शत्रु के आगे मुँह में तिनका लेते हैं जिन हाथों को वे उसके स्तनों पर रखते हैं। और वह फटकारती है कि अब तो बाल सफ़ेद हो गए हैं जीने का क्या भरोसा :

“कंत सुपेती देखतों, अब की जीवन आस
मो थग रहगै हाथ हूँ, घाते मुँहड़े घास”

इन वीर पत्नियों ने जहाँ कायर पतियों को फटकार री है वहाँ वीर पतियों के घावों को सहलाया भी है। पत्नी ने हथलेवे के समय ही हथेली पर के तलवार की मूठ के निशान की चुसन से जान लिया कि पति उसके चूड़े को नहीं लजाएँगे।^१ विवाहोपरान्त घर में प्रवेश करते समय ही नगाड़े की ध्वनि सुन कर दूध ने दुलहिन के अखल से गोंठ छुड़ा ली और अपने घोड़े की पीठ थपथपाई।^२ रति क्रीड़ा करते समय जो पति पत्नी की भुजाओं में ही समा जाता था वह आज इतना फूल गया है कि कवच में भी नहीं समा रहा है।^३ युद्ध में वीरता का प्रदर्शन कर पति घर आया है; युद्ध का अन्त नहीं हुआ है; पति विजय के लिए अधीर है। पत्नी ने बड़े धैर्य के साथ कुछ देर के लिए पति को सुलाया है। चकवी की चीख से कहीं वह जाग न जाए इसलिए पत्नी कहती है हे चकवी ! इतनी क्यों चीखती है ? बहुत धैर्य दिलाने पर पति सोए हैं। सूर्योदय होने पर तू दो पहर अधिक सुख देख लेना। (क्योंकि मेरे पति का युद्ध देखने को सूर्य भगवान् दोपहर तक अपना रथ रोक लेंगे)।^४

रान को सोते समय भी वीर भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं। ऐसा मालूम पड़ता है वीर रस के विभिन्न अवयवों में ही उनका शरीर बना था उन्हें सपने भी ऐसे आते होंगे कि युद्ध हो रहा है, रणभेरियाँ बज रही हैं, हाथी चिंघाक रहे हैं, तीरों की बौछार हो रही है और स्वप्न से जागते ही सचमुच वे तीर-कमान सँभाल

कर, ढाल तूणीर बाँध कर रणक्षेत्र की ओर चल पड़ते।

वात्सल्य एवं वीर रस का अद्भुत समन्वय भी डिगल साहित्य की एक विशेषता है। माता बच्चे को लोरी सुनाती है पर इसलिए नहीं कि ‘मेरे लाल को आउरि निंदरिया’ बल्कि इसलिए कि “चार खंड चौखंडी रे बाला, नोपतड़ी घमकाइजें थूँ।” वह अपने बच्चे को कजरी का दूध इसलिए नहीं पिलाती कि ‘तेरी चोटी बड़े’ बल्कि इसलिए कि ‘घोला दूध पे कायरता रो कालो दाग न लाइजें थूँ।” वह बच्चे को पकवान और फल इसलिए नहीं खिलाती कि वह वजन में बहुत (overweight) बढ़ जाए बल्कि इसलिए कि ‘भारत माँ रो भार उतारजे, मत न भार बहाइजे थूँ।” वह बच्चे को भूले में भुलाती है पर इसलिए नहीं कि उसे नींद आ जाए बल्कि इसलिए कि इतरी बार हिलाइजे रे धरती, जितरा भोला में थन द्यूँ।” और इसी लोरी के साथ उसने बलिदान का पाठ पढ़ा था जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण था पिता के पहले पुत्र का बलिदान :

“बैठो जोड़े बापरे बाघ कसंबल पेच

बैठो घर आयो नहीं, धोली बाघण हेत”

और अगर बच्चा छोटा है, उसे चलना नहीं आता, तो भी कोई बात नहीं। क्षत्रियत्व उसके रंग-रंग में रम गया है। इसीलिए बाप के कटने पर माँ के जलने पर वह अंगूठा चूम-चूम कर घर की रखवाली करता है।

“बाप कट्यो मायइ बली घर सुनो जाणीह

पूत अंगूठो चूँखने राखे निगराणीह”

डिगल काव्य की यह परम्परा अब भी जीवित है। उदयपुर के श्री नाथूदान महीयारीया ने ‘वीर-सतसई’ में श्रृंगार और वीर भावों की मिली जुली अद्भुत धारा बहाई है। हाड़ी रानी की वीरता को दर्शाते हुए कवि ने

१ हथलेवे ही मूठ किण, हाथ विलागा माय।

लाखों बातों हेकलो, चूड़ो मो न लजाय।

२ बंब सुयायो बीन्द नूँ, पेसता घर आय।

चखल सान्हे चालियो, अखल बन्ध छुड़ाय॥

३ हूँ हेली अवरज कहूँ, घर में बाथ समाय।

हाकौ सुयना हूलसँ, मरखौ कौच न माय॥

४ धीर पिया सुतौ धरणी, कुरले चकवी काय।

देखीजें मुख दीहरै, सुख दो जाम सिवाय॥

लिखा है कि रानी ने स्वयं हाथ से सिर काट कर चूड़ावत को भेज दिया। आँखों से एक भी आँसू की बूँद न गिरी। वह अंजन आँखों में ही रहा बढ़ कर कपोलों पर नहीं आया।

“सोस पुगायो पीव कनं, धामो रंगतों कीच
कहियो पण बहियो नही काजल नेणौ बीच”

रानी ने बलिदान के पहले आभूषण बाँट दिए। उन्हें स्वर्ग में साथ नहीं ले गई। धर के आभूषण रंगमहल में रह गए और सिर प्रियतम के पाम :

“हाड़ी भूषण वाँटिया, सुरपुर लिया न साथ
धर रा रंगमहलौ दिया, सिर रा रावत हाथ”

अन्य कवियों में ‘श्री मुकुल’ ने अपनी लोकप्रिय कविता ‘सैनाबी’ द्वारा इसी परम्परा को निभाया है।

डिंगल-काव्य की यह अद्भुत मिली-जुली अनुभूति अपने आप में विशिष्ट है। शृंगार की कालिन्द्जा और वीरता की सुरसरि के संगम पर इन कवियों ने ऐसे काव्य-तीर्थ का निर्माण किया है कि जिसमें अवगाहन करने पर हृदय पवित्र बनता है, मस्तिष्क जागृत होता है और संपूर्ण शरीर में एक साथ स्फूर्ति का संचार हो उठता है।

गवर्नमेन्ट डिग्री कॉलेज,
बूंदी, (राजस्थान)

—नरेन्द्र कुमार भनावत

मध्यमवर्ग : एक अभिशाप (भावकथा)

मैं थका मारदा ऑफिस से लौटा हूँ और मेरी पत्नी कराह रही है। आखिर मैं भी तो इन्सान हूँ। दिन भर फाइलों में सिर खपाता हूँ, घर आकर घर के सभी कामों में अपने आप को पचाना पड़ता है। आज जब मैंने साहब से रमा की दवादारू के लिए कल की छुट्टी माँगी तो वे कड़क गए और आज ही जब उनकी पत्नी का जन्म दिन था, ऑफिस का काम-उन्हें न रोक सका। पड़ोस के लोग समझते हैं कि मैं एक लापरवाह पति जिसके सामने रोटी का ममला है—घर की चिन्ता है, पर पत्नी के लिए प्यार नहीं है। रमा तो यह मानने लगी है कि मेरी आँखों में कोई और समा गया है। मैं किसी के मन का कुछ धोना नहीं चाहता। नौकरी मैं कल छोड़ दूँगा और बता दूँगा कि मेरे मन में रमा के लिए उतना ही प्रेम है जितना एक प्रेमी के मन में हो सकता है। रमा का मुँह ही नहीं मन भी मान जायगा कि उसका पति सौतिया सर्कल से निकल आया है। पर, मैं जानता हूँ कि परसों से मैं फिर भूखा मरूँगा। परसों के बाद फिर से पड़ोसियों की निगाह में गड़ने और रमा की नज़रों में गिरने मैं नौकरी पर जाऊँगा, क्योंकि मैं मध्यमवर्ग का जीव हूँ, जिसका सब कुछ उसकी जीविका है। कोई कुछ कहे इससे उसे क्या ? वह सुनने का आदी है; सुनता आया है—सुनता चलेगा—सुनता चला जायगा।

भोपाल

—राष्ट्रबन्धु

सोवियत संघ में मजदूर संघठन और संचालन

हमारे देश में मजदूर आन्दोलनों का विकास सोवियत रूस की सफल मजदूर क्रान्ति से पर्याप्त प्रेरित रहा है। आजादी के बाद संगठित मजदूरों और संगठनों की संख्या में तेजी के साथ वृद्धि हुई है। इस गमय हमारे देश में दक्ष ट्रेड यूनियनिस्टों का नितान्त अभाव तो है ही साथ ही समुन्नत देशों के मुकाबले में हमारा मजदूर आन्दोलन बहुत ही पिछड़ा हुआ भी है। हमारे देश के मजदूर संगठन और उनके नेतागण अभी विभिन्न देशों के ट्रेड यूनियन आन्दोलनों से बहुत कुछ सीख सकते हैं। विदेशों में वहाँ के मजदूर संगठन आर्थिक जीवन को सुसंगठित रखने में शक्तिशाली माध्यम होते हैं।

रूस में श्रमिक आन्दोलनों का सूत्रपात : रूस में श्रमिक आन्दोलनों और संगठनों का सूत्रपात पचास वर्ष पूर्व जार के समय में सन् १९०५-७ ई० में हुआ था। सर्वे प्रथम इन का रूप हड़ताल-कमेटियों और क्रान्तिकारी संघर्ष-समितियों से अधिक न था। उस समय बोलशेविकों ने उन्हें अपनी क्रान्ति को सफल बनाने के लिए संगठित करना शुरू किया था। पहली रूसी क्रान्ति की विफलता के बाद ही वहाँ की जारशाही और उसकी पुंजिम ने मजदूरों के बनते हुए संगठनों को छिन्नभिन्न करने के लिए घनघोर दमन किया। लेकिन इससे जाहिरा तौर पर तो मजदूर आन्दोलन बिखरा-मा मालूम पड़ने लगा किन्तु गुप्त रूप में गैर कानूनी ढंग से इस्पात, खदान, तेल और कपड़ा मजदूरों का संगठन तीव्र गति से निरन्तर बढ़ता गया। सन् १९१७ ई. में संगठित मजदूरों की संख्या २,६३८,००० तक पहुँच गई थी।

समाजवादी क्रान्ति में : रूस की समाजवादी क्रान्ति में वहाँ के संगठित मजदूरों ने महत्व की भूमिका अदा की थी। क्रान्ति के बाद प्रति क्रान्ति को रोकने और समाजवादी अर्थ व्यवस्था की द्विफाजत करने में भी वे ही सब से आगे रहे। सन् १९१८ के प्रारम्भ में सोवियतरूस की प्रथम ट्रेड यूनियन कांग्रेस हुई, जिसमें

वहाँ के ट्रेड यूनियनियों ने ग्रामीण मजदूरों के संगठन और गरीब किसानों से सहयोग करने का एक व्यापक कार्यक्रम अपने हाथ में लिया। इस प्रकार वहाँ के श्रमिक संगठनों ने गाँव-गाँव में सोवियत प्रणाली को जनता के अन्दर तब तक पहुँचाने और सुदृढ़ करने में महत्व का काम किया।

सामूहिक प्रयोग : सर्वे प्रथम सोवियत संघ के श्रमिक संगठनों ने खेती के समूहीकरण के लिए जोर दिया। औद्योगिक संस्थानों में ऐसी समितियाँ संगठित की गईं, जो किसानों की सहायता करती और संगठित होकर साहसिक खेती करने में लाभ को समझा कर सामूहिक खेती के लिए उन्हें तैयार करती। सन् १९२६ ई० और १९३० ई० में श्रमिक संगठनों ने अपने में से २५ हजार मजग श्रमिकों को प्रशिक्षित करके देहातो में स्थायी रूप से सामूहिक खेती की अभ्युत्थता, मरकारी फार्मों का संचालन और मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों को दक्षतापूर्वक सम्हालने के लिए भेजा। उन्हीं पच्चीस हजार दक्ष श्रमिकों ने धरती पर पहली बार खेती के सामूहिक प्रयोग को सफल बनाया।

इन दक्ष श्रमिकों ने सामूहिक खेती को संगठित करने के साथ ही साथ किसानों में वैज्ञानिक खेती के तरीकों और तरद्द-तरद्द म शिक्षा, और संस्कृति का भी व्यापक प्रचार और प्रसार किया। विगत युद्ध-काल में तो श्रमिक संगठनों ने पहले से भी अधिक महत्व की भूमिका अदा की और अन्न की पैदावार बढ़ाने और युद्ध-कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुआरी धरती को भी जोत कर लहलहाते फार्मों में परिवर्तित कर दिया। फैक्ट्रियों में नम समय ट्रेड यूनियनों ने काम को देश की आवश्यकतानुसार अन्धा बनाने और उत्पादन बढ़ाने का आन्दोदन किया उसी प्रकार से देहातों में भी पैदावार बढ़ाने पर जोर दिया।

ट्रेड यूनियन का संचालन : लेनिन ने कहा था कि “सर्वे द्वारा वर्ग जो समाज का सबसे शक्तिमान गर्व है वह ट्रेड यूनियनों के माध्यम से ही शासन करता है।”

उन्होंने यह भी बताया कि “किन्तु यह शासकीय संगठन नहीं हैं और वह जनता पर अपने विचारों को बलात् आरोपित नहीं कर सकते—उनके संगठन जनता को प्रशिक्षित करने, प्रशासकीय व्यवस्था की शिक्षा और साम्यवाद की शिक्षा देने की पाठशाला है।”

सोवियत संघ की ट्रेड यूनियनों गैरपार्टी जन संगठन हैं। इनमें सभी पेशों में लगे वेतन भोगी कर्मचारी स्वेच्छा से सदस्य बन सकते हैं चाहे वह किसी भी नस्ल, राष्ट्रीयता, मत या धर्म के माननेवाले क्यों न हों। किसी नए आदमी को सदस्य बनने से न तो रोका जा सकता है और न किसी से किसी प्रकार का दुराव ही बरता जा सकता है। कोई भी नागरिक वह चाहे किसी भी औद्योगिक अथवा किसी अन्य संस्थान में काम करने वाला हो वह ट्रेड यूनियनों का सदस्य बन सकता है। उच्च कक्षाओं, प्राथमिक स्कूलों अथवा व्यावसायिक स्कूलों के विद्यार्थियों की भी अपनी-अपनी ट्रेड यूनियन हैं।

कोई हस्तक्षेप नहीं : सोवियत संघ में वेतनभोगी श्रमिकों की संख्या पाँच करोड़ है—जिनमें चार करोड़ सत्तर लाख से अधिक ट्रेड यूनियनों के सदस्य हैं। सोवियत रूप में ट्रेड यूनियन श्रमिक श्रेयों के अधिकारों और हितों की सम्पूर्ण रूप से हिताजत करती हैं। सोवियत संघ का अधिन की धारा १२६ के अनुसार वहाँ के नागरिकों को अधिकार है कि वह अपने को उन संगठनों और ट्रेड यूनियनों में संगठित कर सकते हैं। यह सभी संगठन पूर्ण रूप में स्वतन्त्र होते हैं और उनके कार्यों में सरकार कोई भी हस्तक्षेप नहीं कर सकती। वहाँ की प्रत्येक ट्रेड यूनियन का अपना-अपना अलग विधान और नियम उपलब्ध होते हैं। संचालन उनकी अपनी ही चुनी हुई समितियों के निर्देशानुसार होता है। उनका अपना अपना कोष और अपनी अपनी सम्पूर्ण व्यवस्था होती है। समय-समय पर वह कांग्रेसों और कांग्रेसों को भी आमंत्रित करती रहती हैं। गरज वहाँ की ट्रेड यूनियन वहाँ की जाँगर चलानेवाली जनता की नियमतः और वास्तविक अर्थों में जनतांत्रिक संस्थाएँ हैं जो सम्पूर्ण रूप में स्वतन्त्र हैं।

कार्यकर्ता और पदाधिकारी : रूप में ट्रेड यूनियनों के सक्रिय सदस्यगण अपनी जनतांत्रिक और स्वतन्त्र परम्परा को आगे बढ़ाने में योगदान देते रहते हैं।

ट्रेड यूनियनों में सवैतनिक कार्यकर्ता बहुत कम होते हैं। ६६ प्रतिशत यूनियनों की समितियाँ—चाहे वह कारखानों आफिसों अथवा उच्च शिक्षालयों आदि जहाँ कहीं भी काम कर रही हों—अवैतनिक द्वारा ही अधिकतर संचालित होती हैं। ज़्यादातर लोगों का यही विचार होता है कि ट्रेड यूनियन के प्रति उनके कर्तव्य जातीय जीवन को दो जाने वाली सेवाओं का ही एक अंग है और उसे वहाँ के लोग आम तौर पर घरों के काम के बाद निःशुल्क ही सम्पन्न करते हैं। इनमें दूकानों, कारखानों और ऊँची ट्रेड यूनियन कमेटियों के सदस्य-ग्रुप संगठनकर्ता भी शामिल होते हैं।

ट्रेड यूनियनों के सम्मेलनों और कांग्रेसों में एक करोड़ साठ लाख स्त्री पुरुष पदाधिकारी के रूप में चुने जाते हैं। गरज कि वहाँ की ट्रेड यूनियनों का हर तीसरा सदस्य किसी न किसी यूनियन की समिति, उप समिति में ग्रुप अर्गनाइज़र, इन्स्पेक्टर, डेलीगेट, शिक्षा या मनोरंजन के निर्देशक, श्रमिक सुरक्षा इन्स्पेक्टर या जन इन्स्पेक्टर आदि में से किसी पद पर होता है। यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं कि आफिसों और कारखानों के श्रमिक इन पदों के लिए उचिततम व्यक्तियों वा ही चुनाव करते हैं।

जनतांत्रिक केन्द्रीयता : सोवियत संघ ट्रेड यूनियनों का संगठन, डॉचा जनतांत्रिक केन्द्रीयता के आधार पर होता है, इसका तात्पर्य है कि सभी ट्रेड यूनियनों के संगठन नीचे से ऊपर चुने हुए सदस्यों द्वारा संचालित होते हैं। ट्रेड यूनियन संगठनों के सबसे अधिक महत्व के मामलों का निर्णय और निर्देश उनकी साधारण सभा देती है जिसमें प्रायः सभी सदस्यों की आम राय मिल सके। जन पदों क्षेत्रों और प्रजातन्त्रों के स्तर पर कांग्रेसों और अखिल देशीय स्तर पर सभी ट्रेड यूनियनों द्वारा मेजे गए प्रतिधितियों के कांग्रेसों में निर्णीत प्रस्तावों और निर्देशों को भी अनुशासन बद्ध रूप में माना जाता है। कांग्रेसों और कांग्रेसों में कार्यसमितियों का चुनाव भी होता, जो संगठन की सम्पूर्ण कारवाइ को संचालित करती है।

इस प्रकार उच्च स्तर की कमेटियों और कांग्रेसों के निर्णयों को अनुशासन बद्ध रूप में सभी स्तर की कमेटियों संचालित करती हैं और इस प्रकार सारे देश की श्रमिक श्रेणी एक मजबूत एकता के सूत्र में बन्धी हुई है।

औद्योगिक संगठन : सोवियत रूस की ट्रेड यूनियनों की दूसरी विशेषता है कि वे सभी औद्योगिक इकायों में संगठित हैं अर्थात् वहाँ की सभी ट्रेड यूनियनों में किसी एक उद्योग या उनसे सम्बन्धित किसी संस्थान या प्रतिष्ठान के कर्मचारी इन यूनियनों में सम्बद्ध होते हैं। प्रत्येक ट्रेड यूनियन की यूनियन अपने उद्योग से सम्बद्ध सभी कर्मचारियों का वेतन और मजदूरी निर्धारित करती हैं। उन्हें इस बात की भी वीक्षित होती है कि वह अपने राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में अपने सम्बद्ध सभी विभागों का पूरा-पूरा लेखा-जोखा होते रहें और दैनिक आवश्यकताओं के मामलों पर वह मजदूरी से विचार करती रहती हैं।

जनतन्त्र में 'आस्था' : वहाँ की प्रत्येक ट्रेड यूनियन अपने में जनतान्त्रिक पद्धति का पूरा पालन करती है। वे समय-समय पर अपनी साधारण सभाएँ और कांग्रेसों का आयोजन करके अपने सभी कार्यकर्ताओं का विवरण सदस्यों के सामने विचार के लिए रखती हैं, समय-समय पर अपना चुनाव कराती हैं और

प्रत्येक सदस्यों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करते रहने के लिए रचनात्मक आलोचनाओं प्रत्यालोचनाओं का स्वागत करती हैं।

वहाँ की प्रत्येक ट्रेड यूनियन के सदस्यों को अधिकार होता है कि वह अपनी यूनियन के किसी स्तर के लिए चुनाव में खड़े हों या समिति के सामने कोई भी प्रश्न या आलोचना अथवा शिकायतों को कमेटी के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं। इस पर समिति का दायित्व होता है कि सभी सदस्यों की आलोचनाओं या शिकायतों को ध्यानपूर्वक सुन कर पड़ताल करके जवाब दें और शिकायतों को शीघ्र ही दूर करने की व्यवस्था करें।

सामूहिक नेतृत्व : सोवियत संघ में ट्रेड यूनियनों के किसी भी स्तर का कोई भी नेता किसी भी सदस्य पर माजिकाना ढंग का रोब नहीं जमा सकता और कोई भी ट्रेड यूनियन निर्बंध अनुशासन हीनता को बर्दाश्त नहीं करती। वहाँ की ट्रेड यूनियनों में सामूहिक नेतृत्व के सिद्धान्त का कड़ाई से पालन किया जाता है।

१, रामकली चौधरी रोड,
लम्बा गार्डन, वाराणसी

—रामेश्वर प्रसाद मेहरोत्रा

‘प्राइवेट’ शब्द का अर्थ

प्राचीन ग्रीस में जो व्यक्ति अपने आप को सब लोगों से अलग-सलग रखता था और सार्वजनिक कार्यों में किसी भी प्रकार का कोई भाग नहीं लेता था—उस व्यक्ति को व्यर्थ और बेकार समझा जाता था। इसी प्रकार के व्यक्ति को ‘प्राइवेट’ कहा जाता था ग्रीक भाषा में इस प्रकार के व्यक्ति ‘इडियोटीज’ (idiotes) कहा जाता था जिस का अर्थ ‘प्राइवेट’ होता है। इसी ‘इडियोटीज’ ग्रीक शब्द से अंग्रेजी का शब्द ‘इडियट’ (idiot) बना है जिसका अर्थ ‘भौढ़’ या ‘मूर्ख’ होता है।

भोजपुरी कहावतों में लोक-विश्वास

लोक-साहित्य में लोक-विश्वासों का महत्वपूर्ण स्थान है। लोक-साहित्य स्वयं ही आदिम मानव मस्तिष्क की मस्ती और साक्षात् अभिव्यक्ति है। लोक-विश्वास पर यह बात और भी नरकट रूप से घटित होती है। जाति, विशेष या समूह-विशेष जब अपने जातीय या समूह-गत संकट कालीन क्षणों में अपने भय और लालसा आदि की समुचित व्याख्या उपस्थित करता है और सुज्ञा के लिए प्रयत्न करता है तो लोकवार्ता में उनकी प्रतिच्छाया स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। लोकविश्वास, शकुन आदि इसी रूप में दिखलाई पड़ते हैं, अतः जातीय जीवन के सांस्कृतिक स्तर और विकास को समझने के लिए इन लोक-विश्वासों का महत्वपूर्ण योगदान है।

नृशास्त्रियों के लिए लोक-विश्वास सम्बन्धी कहावतों में विशेष मामग्री सुगन्धित हैं। सुप्रसिद्ध लोक-वार्ता विशेषज्ञ श्री रॉबर्ट और मैरेट ने तो अन्य सूत्रों की अपेक्षा लोकोक्ति वाले स्रोत को विशेष महत्व दिया है, क्योंकि सूत्र रूप में वर्णित होने से इसमें निहित विचार विकृत होने की आशंका बहुत कम रहती है। इसमें टिकाऊपन अधिक होता है और लोककण्ठ में बहुत दिनों तक सुगन्धित रहती है।

लोक विश्वास आदिम मानव-विश्वास होने के कारण तर्क की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते। समाज की चेतना उसे परम्परा में बहान करती आ रही है। कहा जाता है कि लोक-विश्वास सिर्फ अनपढ़ लोगों को ही प्रभावित करते हैं, परन्तु यह बात पूर्णतः सत्य नहीं। पढ़े-लिखे लोग भी इसका पालन करते देखे जाते हैं। अभी भी ऐसे बहुत से लोग हैं जो अपने पिता की मृत्यु वाले दिन को कोई नया शुभ काम प्रारम्भ नहीं करते। पाश्चात्य देशों के थियेटर वाले भी नाटक की रंगमंचीय सफलता के लिए कुछ टोटके करते हैं। वे अपनी फूलों से रंगमंच को मजाना अशुभ मानते हैं।

इन लोक विश्वासों में बहुत सी वर्जनाएँ हैं, निरोध सूचक बातें हैं, शुभाशुभविचार हैं। हमारा लोक जीवन इस प्रकार की निषेधात्मक बातों से भरा

हुआ है; जीवन की जिस घटना या दुर्घटना में कुछ अनोखानप दिखलाई पड़ा, जिसे आदिम मानव ने नहीं समझा, उसके प्रति वह सशंक दृष्टि रखने लगा और सतर्क होकर विचार करने लगा। उसने अपनी आनेवाली संतति के लिए कुछ ऐसे संकेत छोड़ दिए, जिससे उसे अनुविधान हो।

ऐसे निषेध के कारण विद्वानों ने निम्नलिखित बतलाए हैं :—

(क) वस्तु विशेष की पवित्रता (ख) उसमें रहस्यमय शक्तियों का आरोप (ग) अतिप्राकृत वस्तुओं से संबंध (घ) अस्वच्छता (च) किसी कार्य को निर्विघ्न और पूर्णता से संपादित होने के लिए (छ) चोरी और नुकसान आदि से बचाने के लिए।

जो निषेधों को नहीं मानता लोक विश्वास के अनुसार उनका दंड रोग या मृत्यु के रूप में प्राप्त होता है।

भोजपुरी कहावतों में निम्न प्रकार लोक विश्वास पाये जाते हैं।

(क) तिथि वार और मास सम्बन्धी लोक विश्वास
(ख) शारीरिक अंग और व्यक्ति संबंधी लोक विश्वास
(ग) भूत-प्रेत सम्बन्धी लोक विश्वास।
(घ) पशु-पक्षी सम्बन्धी लोक विश्वास।

प्रस्तुत निबंध में तिथि, वार, मास संबंधी और शारीरिक अंग सम्बन्धी लोक विश्वासों की चर्चा तक सीमित रखा जाएगा।

जातीय या परिवारिक जीवन में कुछ दिन शुभ और कुछ दिन अशुभ माने जाते हैं। पाणिनिकाल में भी पुरायाह और पुराय रात्र का विचार प्रचलित था (पाणिनि कालीन भारतवर्ष: श्री वासुदेव शरण अग्रवाल पृष्ठ ३७६) भोजपुरी क्षेत्र में अभी भी दो दिन अशुभ या शुभ कार्य के लिए वर्जित माने जाते हैं या एक तो जाति यह समूह विशेष के लिए कोई दिन सामान्य रूप से अशुभ माना जाता है उसे “कुलमान” कहते हैं दूसरा वह दिन जिस दिन कि पिता का देहान्त हो गया हो, इसे “पिताघातिक” कहते हैं।

नया वस्त्र पहनना किसी व्यक्ति के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। पहनना मंगलमय हो और उसका टिकाऊपन निश्चित हो, इसके लिए भोजपुरी समाज में कुछ दिन निश्चित हैं और वे हैं बुध, वृहस्पति और शुक्रवार :

“बस्तर पहिरे तीन बार
बुध बिअफे शुक्रवार”

लियों का वृहस्पति बार को स्नान करना अमंगलसूचक, विशेषतः मासिक होने के बाद प्रथम बार नहाना :

“अत धनी धबइलू
जे बिअफे चदि नहलू”

अर्थात् ऐ अभागी स्त्री, तुम इतनी उतावली हो गई कि वृहस्पति को ही दौड़ कर नहाने गई।

इसी भौति नारियों के लिए रविवार और मंगलवार को जूड़ा खोलने और बांधने तथा चूड़ी पहनने की मनाही है। इसका उल्लंघन करने से सिर दर्द होता है या बुखार आता है :

“अतवार मंगर ना बान्हाई जूरा
हाथ पसार ना पहिरो चूरा
अइहें जर खोलइहें चूरा
बधी कपार त खोलइहें जूरा”

देहातों में चारपाई बुनने और टट्टर आदि खड़ा करने में भी विधि-निषेध का ध्यान रखा जाता है। जिस चारपाई पर हमारे विश्राम के आनन्ददायक क्षण बीतते हैं, यदि वह हमें सुरक्षित न रखे, हमारे प्राणों की आशंका बनी रहे, तो वह चारपाई किस काम की, अतः चारपाई को सभी प्रकार से सुरक्षित रखने का ध्यान लोक-मानस में रहता है। मंगल और बुधवार को चारपाई न बुनी जाय और बुधवार को टट्टर न बनाया जाय, इससे मृत्यु-दंड की आशंका रहती है—

“मंगर बुध के बीने खाट
से देखे सरग के बाट
मंगर टाटी
बुध खाटी”

इतना ही नहीं चारपाई बुनते समय उसकी बुना-

वट के “सोक” (चार-चार छः छः या उससे अधिक भी रस्सियों को जब बुनकर एक साथ समाप्त करते हैं, तो इसे एक “सोक” कहते हैं) की गणना से शुभा-शुभ विचार किया जाता है। “सोक” की गणना की अपनी पद्धति, इसे गिनने के लिए इन्द्र, चन्द्र, यम का प्रयोग करते हैं, एक दो, तीन नहीं बुनने वाले की चेष्टा यही रहती है कि चारपाई का अन्तिम “सोक” यम पर न हो अन्यथा मृत्यु की संभावना रहती है। शेष दो सोकों पर समाप्त होने पर आनन्द ही आनन्द है कोई खतरा नहीं।

“इन्द्र का घरे नीनि आवे
चन्द्र का घरे होरी
जमा का घरे मरना होई”

परिवार में लड़के बड़े-बूढ़े या बुढ़ियों से कहानी सुनाने का आग्रह करते हैं, यह कार्य स्त्रा-पी कर रात में निद्रिचन्त भाव से किया जाता है, यदि पुरुष या नारी दिन में कहानी कहने लगे तो पारिवारिक कार्यों में विघ्न की आशंका हो जाय, इसलिए दिन में कहानी कहने का निषेध है, दिन में कहानी कहने वाले की बदन पर जाती है—

“दिन में कहे कहनी
ओकर मुए बहिनी”

कुछ महीने ऐसे हैं, जिनमें होने वाले कामों का शुभाशुभ विचार किया जाता है। सावन-भादों में उपले पाथन की मनाही की गई है। कहावत कहती है कि सावन में उपले पाथने से पति की और भादों में पाथने से भाई की मृत्यु होती है—

“सावन साईं
भादो भाई”

यह मनाही संभवतः इसलिए की जाती है कि कम से कम दो महीने भी तो कृषक लोग गोबर की खाद बनाएँ ऐसे तो लोग जलावन के लिए ही गोबर के उपले बना कर ढाल देते हैं। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि इन महीनों में गोबर पाथने में असुविधा होती है। कीड़े-मकोड़े निकलते हैं अतः गोबर पाथना निरापद नहीं रहता। इन महीनों में गाँव के कुम्हार अपने बर्तन पकाने के लिए इस गोबर को ठठा ले जाते

हैं, अतः उनकी सहायता हो इसलिए भी यह कहावत बन गई हो।

इसी प्रकार माघ मास में उत्पन्न संतान बाघ के समान बलवान् होती है और ज्येष्ठ मास में उत्पन्न संतान हीन होती है :

(क) “माघ के लइका बाघ होला

(ख) जेठ के लइका हेठ होला”

माघ महीने में अनुकूल शीत ताप पड़ता है और ज्येष्ठ में असह्य गर्मी पड़ती है, संभवतः इसका अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव बच्चों के स्वास्थ्य पर पड़ता हो :

शारीरिक सम्बन्धी कहावतें : शारीरिक अंगों की विशेषता से भी शुभाशुभ विचार किया जाता है। जब लोकमानस इस विशेषता का कोई कारण ढूँढ़ नहीं पाता, तो उसे अद्भुत मानकर किसी विश्वास के साथ सम्बन्ध कर देता है। प्रायः लोगों की छाती में केश नहीं होते हैं, पर यदि संयोगवश किसी की छाती में केश नहीं हुए तो उसे विशेष प्रकार का व्यक्ति माना जाता है। और लोग अपनी आशंका प्रकट करते हैं कि ऐसे व्यक्ति पर विश्वास न किया जाए :

“जेकरा छाती बार ना

ओकर एतवार ना”

इसी प्रकार लोक-विश्वास है कि जिस स्त्री का तलुआ पोला और सिर ऊँचा हो उसका पति असमय ही मर जाता है :

“पोला तलुआ ऊँच कपार

तौन खाई आपन भरतार”

एक लोक-धारणा यह भी है कि जिसके सिर पर रुसी (केश की मेल) हो, वह धनवान् होता है :

“जेकरा माये रुसी

सकेश हाये भूरी”

इसी प्रकार जिसकी आँखें भूरी हों वह भाग्यवान् होता है :

“बिलर आँख भगिमान होला”

विकृत अंग सम्बन्धी लोक विश्वास : आंगिक

विकृत से दो प्रकार के लोकविश्वास प्रचलित हैं, एक तो दुष्टता सूचक, दूसरा अपशकुन सूचक।

अंगविकृति से दुष्टता सूचक मनोवैज्ञानिक कारण ढूँढ़े जा सकते हैं। प्रारम्भ में इन कहावतों के लिए मनोविज्ञान का आधार नहीं ढूँढ़ा गया होगा, वरन् विकृत अंग वाला जब दुष्टता करने लगा होगा तो सुदीर्घ निरीक्षण के बाद कोई लोक-विश्वास प्रचलित हुआ होगा। आधुनिक मनोविज्ञान वेता इस बात की पुष्टि कर चुके हैं कि जिस व्यक्ति के शारीरिक अंग में कोई त्रुटि या कमी होती है, उसकी क्षतिपूर्ति वह किसी न किसी रूप में करता है। यह क्षतिपूर्ति दो रूपों में कर सकता है : या तो वह विधायक कार्यक्रम अपना कर अपना या दूसरों का भला करेगा और आगे बढ़ेगा या उत्साह रहित और निराश होकर अपने को नीचे गिराएगा और समाज विरोधी कार्यक्रम अपना कर अपनी ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करेगा। इस पर मनोवैज्ञानिक एडलर ने प्रकाश डाला है और इसी बात की पुष्टि की है (द्रष्टव्य what Life should mean to you : Adler का Feeling of Inferiority and supriminity नामक अध्याय)

भोजपुरी कहावतों में भी आंगिक विकृति वाले लोग समाज विरोधी रूप में दिखलाए गए हैं। इन कहावतों में नेत्र विकार वाले व्यक्ति की चर्चा विशेष रूप से की गई है। काना व्यक्ति सबसे अधिक चर्चा का विषय है। वह अत्यन्त दुष्ट माना गया है। वह विरले ही भला निकले :

“बिरले कान होई भलमानुस”

लोगों को पहले से ही यह अन्देशा लगा रहता है कि वह कोई-न-कोई दुष्टता अवश्य करेगा :

“ए काना हम त अगते जाना”

नेत्र-विकार वाले कई कोटि के होते हैं, अन्धा, काना, ऐँचा ताना (टेढ़े-तिरछे देखने वाला) फूली वाला (जिसकी आँखों में कौड़ी निकल गई है) तथा भूरी आँखवाला। लोक विश्वास है कि अन्धे की अपेक्षा काना अधिक दुष्ट होता है और उससे भी ऐँचा-ताना और ऐँचा-ताने से भी अधिक दुष्ट भूरी

आँखों वाला होता है :

“सड़ में सूर हलार में काना
सवा लाख में आईचा ताना
आईचा ताना कहे पुकार
मंजरा से रहिहोसियार” *

इसी प्रकार नाटे कद के और छोटी गर्दन वाले बक़ि भी दुष्ट होते हैं :

“नाट, खोट, कोतह गरदनिया
ए तीनों से काँपे दुनिया”

व्यक्ति सम्बन्धी लोक विश्वास : पुत्र जन्म दाम्पत्य जीवन में महत्वपूर्ण है। नारी जीवन की चरम सफलता उसके मातृत्व में है। यदि विवाह के बहुत दिनों बाद तक पुत्र न हो तो दम्पति चिन्तित हो जाते हैं और अनेक प्रकार के अनुष्ठान करने लगते हैं। धर्मप्रिय हिन्दू समाज धार्मिक अनुष्ठानों की और विशेष रूप से झुकता है। लोकविश्वास है कि ‘हरिवंश पुराण’ सुनने से पुत्र प्राप्ति होती है :

“बंश खातिर आदिमी हरिवंश सुनेला”

औरतों की यह धारणा है कि जब गर्भ में बेटी रहती है गर्मिणी मोटी होती है और बेटा पेट में रहता है तो वह दुबली होती जाती है :

“बेटी का बेरि मोटाल
बेटा का बेरि दुबराला”

पुत्र जन्म चूँकि बहुत महत्वपूर्ण माना गया है, इसलिए पुत्र जन्म खुशी में सभी बन्धु-बंधवों को शामिल करना चाहिए अपने बन्धु-बान्धवों को खिलाना-पिलाना चाहिए, कुछ देना-लेना चाहिए, और सभी का आशीर्वाद मिल सके :

“धन बेटा अइसे ना लेवे के”

पुत्र-पुत्री ३ सम्बन्ध में एक अन्य लोक-विश्वास भी है कि जो पुत्री तीन पुत्रों के बाद होती है, उसके

कोऑपरेटिव कालेज,
जमशेदपुर, (बिहार)

जन्म के बाद परिवार में सुख-समृद्धि आती है पर तीन पुत्रियों के बाद होने वाला पुत्र परिवार वालों के दारिद्र्य का कारण होता है :

“तेतरि बेटी राज रजावे
तेतर बेटा मीखि मंगावे”

बच्चों के जीवन में दाँतों का पहले-पहल निकलना भी बहुत महत्वपूर्ण है, कितने लड़के तो रोग के शिकार हो जाते हैं। लोक-विश्वास है कि जिन बच्चों के दाँत छः महीने की अवस्था में ही निकलने लगें, तो वह सदा सुखी रहेगा, उसे दूध भात की कमी नहीं रहेगी।

“छव महीना के दँतुली
खाले दूध भतुली”

स्त्रियों का विश्वास है कि जो स्त्री कुपण होती है उसे बच्चा जनते समय बहुत कष्ट होता है, यह कष्ट तभी दूर होसकता है जब उसके बच्चा जनते ही हवा में आटा उड़ाया जाता रहे :

“निकुटी बिआइल
पिसान उधि आइल”

घर के बूढ़े के सम्बन्ध में भी एक लोक विश्वास है कि यदि वह अधिक खाने लगे तो घर में दरिद्रता का प्रवेश होता है :

“बूढ़े का मुँहे दक्षिदरा पड़े ला।”

इस लोक विश्वास का मतलब संभवतः यह है कि बूढ़े संतोष से रहकर परिवार के लिए उदाहरण नपाइयत करें अन्यथा उस परिवार के लड़के-बच्चे असंतुष्ट रहना सीखेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छोटी मोटी अनेक बातों पर लोक विश्वास प्रचलित हैं, इनका लोक-जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है और बहुत-बार पढ़े-लिखे पुरुष और स्त्रियों भी इन पर विश्वास करती दृष्टिगोचर होती हैं।

—सत्यदेव जोषा

* तुलनीय : “काने, खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जाति
तिय विशेष, पुनि चेरि, कहि, भरत मातु मुसकानि।”

सम्पादकाचार्य वाजपेयी जी

सम्पादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी जी का स्थान देश की पत्रकारिता, विशेषतः हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र में अनुपम है। वह हिन्दी-पत्रकारों के पितामह माने जाते हैं। उन्होंने उस समय लेखनी उठाई थी, जब पत्रकारिता एवं हिन्दी का क्षेत्र संकुचित था। उस समय उन्होंने हिन्दी को स्वर दिया, गति दी और दी दिशा। इतना ही नहीं, उन्होंने सारे जन समाज में चेतना उत्पन्न की और स्वतन्त्रता का पथ दिखाया। दूसरे शब्दों में वाजपेयी जी पुराने जमाने, माहिल्य, पत्रकारिता, राजनीति और वर्तमान युग के बीच की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। उनकी जानकारी तत्कालीन इतिहास के लिए विशेष महत्व की है। उनकी लेखनी में आज, विचारों में नवीनता और दृढ़ता है। उनके द्वारा हिन्दी की पत्रकार-कला का मस्तक उँचा हुआ है। वह एक तेजस्वी, प्रतिभाशाली और निर्भीक पत्रकार हैं। अपने जीवन में इन गुणों का उन्होंने दृढ़तापूर्वक परिचय दिया है।

सन् १९०५ में इस क्षेत्र में 'हिन्दी-बंगवासी' के माध्यम से उन्होंने प्रवेश किया था और आज आधी शताब्दी से अधिक समय बीतने पर भी वह वही कार्य कर रहे हैं, यह कम महत्व की बात नहीं है। 'भारत-मित्र' 'स्वतन्त्र', तथा 'तृप्ति' सरीखे प्रसिद्ध पत्रों का भी उन्होंने सफलतापूर्वक संपादन किया। इतने वयोवृद्ध होते हुए भी उनके महत्वपूर्ण लेख समाचार पत्रों में प्रायः प्रकाशित होते रहते हैं। इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से पत्रकारिता और पत्र संपादन कार्य में अवकाश ग्रहण करने पर भी उनका निर्देशन हमें बराबर मिलता ही रहता है। उनकी सेवा ग्रन्थ-प्रणयन की दृष्टि से भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनके अनेक ग्रन्थरत्नों से हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के विविध क्षेत्रों का भण्डार समुन्नत और अलंकृत हुआ है। कुछ समय पूर्व 'ज्ञानमण्डल' द्वारा प्रकाशित 'समाचारपत्रों का इतिहास' वाजपेयी जी की हिन्दी और पत्रकार-जगत् को एक महत्वपूर्ण अन्तरी देन है। उसमें भारतीय समाचारपत्रों के सौ वर्षों (१८२६ ई०

से १९२५ ई० तक) का प्रामाणिक इतिहास दिया गया है। भारत में मुद्रणकला और समाचारपत्रों का श्रीगणेश किस प्रकार हुआ, पत्र-प्रकाशन तथा संचालन आदि में कैसी कठिनाइयाँ सामने आईं और उनका प्रतिरोध सफलतापूर्वक करते हुए भारतीय समाचारपत्र किस प्रकार आगे बढ़ते गए, इसी का चित्रण वाजपेयी जी ने अपने पत्रकार-जीवन के ५० वर्ष के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर इस ग्रन्थ में किया है।

श्रेष्ठ वाजपेयी जी से मेरा परिचय कराने का श्रेय स्व० पराङ्कर जी को है। उनके प्रथम दर्शन मुझे लखनऊ में ६ या ७ मार्च १९२२ को उनके निवास-स्थान पर हुए थे। उसके बाद तो अब तक कई बार उनकी सेवा में घण्टों रहने का सुअवसर मिला है। एक बार जब मेने उनसे फोटोप्राफ लेने का आग्रह किया तब वह मुस्करा कर बोले—“अभी मैं मरूँगा नहीं, वैसे चित्र आप ले सकते हैं।” और, सचमुच इस ७८ वर्ष की उम्र में उनकी कर्मठता और नियमितता देखकर आश्चर्य होता है। १-१०-५५ के निम्नांकित कृपा पत्र से उनकी सजगता और व्यस्तता की एक झलक मिलती है—

“आशीर्वाद।...इस समय हम बहुत व्यस्त हैं। चार वर्ष पहले एक पुस्तक लिखी थी। उसका संशोधन करना और अद्यतन (up to date) करना ये दोनों बड़े काम हैं। सहायक कोई नहीं है। पाँच छः घण्टे नित्य इसीमें जाते हैं। इससे पिछड़ छुटने पर एक और काम करना पड़ेगा—वह सिर पर खड़ा है। इस प्रकार तीन महीने व्यस्त रहना पड़ेगा। पेट कूट कर पीड़ा उत्पन्न कर ली है।”

हाल में ११-७-५८ के श्रेष्ठ पं० बनारसीदास चतुर्वेदी जी के नाम लिखे पत्र से भी इसकी पुष्टि होती है। वाजपेयी जी लिखते हैं—

“...इधर शरीर गड़-गड़ चल रहा है। फिर भी संस्मरण लिखना आरम्भ किया है। प्रायः २० पृष्ठ फुलस्केप के हो गए हैं जिनमें ३६ पृष्ठ तो वंश परिचय ही है बीच-बीच में शरीर मटुर बैल की तरह आगे नहीं

चलता, इसलिए काम मन्द गति से हो रहा है फिर भी नित्य जारी है।”

अभी पिछली बार १२-१२-५७ को लखनऊ में मैंने उनके दर्शन किये। सायं ५ बजे का समय था। वाजपेयी जी चार पाई पर बैठे कैलाश और दूध सवन कर रहे थे। इन रुद्ध चौकी पर बैठने का उन्होंने संकेत किया। इस बीच एक मज्जन दैनिक ‘आज’ का कोई अंक देखने आए। नौकर ने फाइल लाकर दी तो वाजपेयी जी मुझ से बोले—“कहिए, आप भी कोई अखबार चाहते हैं?” मैं मुस्कराया तो उन्होंने मुझे ध्यानपूर्वक देखा और बोल उठे—“अरे बुढ़ापा, तेरे मारे अब तो हम अकुलाय गए।” और हँसने लगे।

बात-चीत के प्रसंग में श्रद्धेय गर्दे जी की चर्चा आई तो बोले—“बढ़ दस साल पहले ही बूढ़े हो गए थे। मैं तो अभी दस बीस वर्ष नीने की तैयारी कर रहा हूँ। ‘संस्मरण’ शब्द के सम्बन्ध में चर्चा करने पर वाजपेयी जी बोले—“आपका दृष्टिकोण ठीक है। जीवितों के लिए भी ‘संस्मरण’ शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए। हम लोगों में एक दुर्बलता है—शब्द का अर्थ बड़ा नहीं पाते।”

पहले वाजपेयी जी लेखों का पारिश्रमिक नहीं लेते थे—यहाँ तक कि एक बार तो उन्होंने पारिश्रमिक लौटा भी दिया था। उस समय शुरू से ही हिन्दी के लेखक और पत्र निःशुल्क लिखते और छापते थे। नए लेखक की कोई रचना यदि किसी प्रसिद्ध पत्र में प्रकाशित हो जाती तो वह अपना परम सौभाग्य ही मानता था और वह अंक अपने इष्ट मित्रों को दिखाता फिरता। अधिकारी तथा प्रसिद्ध लेखक अपने विचारों के प्रचार के हेतु ही पत्रों में निःशुल्क लिखते थे। महापिं दयानन्द और और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी उन दिनों ‘भारत मित्र’ में लिखते थे। आधुनिक युग की शांति उस समय न तो लेखक पारिश्रमिक चाहते थे और न सम्पादक देते ही थे। सब तो यह है कि पत्रों की स्थिति ठीक नहीं थी। वे चलते थे, यही बहुत था।

समय बदलता रहता है। अतः हिन्दी पत्रकारिता ने भी करवट ली—हिन्दी पत्रों का भाग्य भी चमका। वाजपेयी जी के शब्दों में—“घूरे के दिन भी बहुरे”।

पर पत्रों के ध्यान में पुराना ही जमाना था, जिनकी अच्छी चलती-बनती थी, वे भी टुकड़ों में लगे रहते और घाटे का रोना रोया करते थे। सुप्रसिद्ध लेख लेना उन्होंने अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझ लिया था। एक मासिक पत्रिका लेख के लिए पाँच रु. देकर लेखक को कृतार्थ करती थी। सम्पादक तो लेख को अग्र स्थान देने के साथ ही महत्त्वपूर्ण बताता था; पर स्वत्वाधिकारी की दृष्टि में पाँच रु. ही उसका नवित मूल्य था। स्वाभिमानी लेखक ऐसी पत्रिका को कब लेख दे सकता था? परन्तु जहाँ चार आने फर्में की दर पर लोग पुस्तकें लिखते और अनुवाद करते थे, वहाँ यदि ऐसे लेखक और अनुवादक को पाँच रु. (बीस फर्में का पारिश्रमिक) मिल जाए तो वह तो इस रकम को ‘आधी के आम’ ही समझेगा। हिन्दी में अब भी ऐसे लेखक होंगे।”

आधुनिक पत्रकारिता की चर्चा चर्चा करते-करते वाजपेयी जी बहुत गम्भीर हो जाते हैं। उनका यह कथन कितने मार्के का है :

“हिन्दी के पत्र लेखक को पारिश्रमिक देने योग्य हो गए हैं। परन्तु उनकी दृष्टि अभी तक संकुचित-सी ही है। इसलिए अच्छे लेख कम ही देखे जाते हैं। मैं प्रायः सुप्रसिद्ध लेख लिख दिया करता था। परन्तु मुझ से कलकत्ता विश्वविद्यालय के पं० लालताप्रसाद सुकुल ने आग्रह किया और प्रतिज्ञा कराई कि बिना पारिश्रमिक लिए लेख न लिखा करूँगा। मैंने प्रायः तब से सावधानी से इस प्रतिज्ञा का पालन किया है। परन्तु फिर भी पत्र वालों की दृष्टि विशाल न होने के कारण लेख खप जाने पर अति पारिश्रमिक देने वाले पत्र कम ही देखे जाते हैं। कोई आधा दत्ता है तो कोई पौना। पूरा देनेवाले बिल्हे ही मिलते हैं। एक पत्र वाले ने तो मेरे कई लेख मार दिए। कुछ पुराने कर्क के लौटा दिए और कुछ हाँकी टोकरी में डाल रखे। यह विचार नहीं किया कि हम लेखक की कितनी हानि कर रहे हैं। प्रस्तावित क बदले लेखक को हतोत्साह करने में समाचार पत्रों की कितनी हानि होती है, यह उनकी समझ में नहीं आता। हम हिन्दी का दुर्दैव ही मानना पड़ता है।”

वाजपेयी जी ने बताया—“तुर्कों वालों ने मुझ से कहा—आपका नाम ताश्कन में सुना था। हम कुछ

बोल नहीं सके। बबल आश्चर्य हुआ।”

मेरे मुख से इसका उत्तर यह निकला—‘मुझे तो इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं है।’

वाजपेयी जी ‘मूड’ में थे। काफी देर तक

बातें होती रहीं। जब मैं चलने लगा, तब

वह बोले—“हमको भी बात करने का कुछ वक़्त है।”*

हिन्दी-संस्कृत, गायघाट,
वाराणसी

—गौराशंकर गुप्त

नवली चित्र

एक दिन एक चित्रकार मेरे पास प्रसिद्ध चित्रकार पिकासो के एक चित्र को बेचने के लिए आया। मैं उस चित्र को लेकर पिकासो के पास गया। पिकासो से मेरा पुराना परिचय था। उस चित्र को देखकर पिकासो चिढ़ गया और कहने लगा : “यह चित्र नकली है—एकदम नकली है।”

अगले दिन वह चित्रकार मेरे पास फिर आया जो कि पिकासो के चित्र को बेचने के लिए आया था। उसने पूर्ण बल पूर्वक कहा : “यह चित्र असली है; बिल्कुल असली है और पिकासो का ही बनाया हुआ है।”

मेरे हृदय में सन्देह उत्पन्न हो गया। मेरे पास पिकासो के बहुत-से चित्र थे। उनमें से एक चित्र को लेकर पुनः पिकासो को दिखलाया इस बार भी वह मुँह बनाकर कहने लगा : “यह चित्र भी नकली है—एकदम नकली।”

मैं हैरान हो गया। मैंने उस चित्र को उसे स्वयं बनाते हुए देखा था। मैंने कहा : “मैंने स्वयं आप को इस चित्र को कैन्वास पर बनाते हुए देखा है।”

पिकासो ने अत्यन्त शान्तिपूर्वक उत्तर दिया : “यह बात है। मैं स्वयं भी कभी कभी ऐसे चित्रों को बनाया करता हूँ जो असली नहीं होते—नकली होते हैं।”

—जार्ज माइकल

चौबे जी

चौबे जी ब्राह्मण वर्ण में जगमगाते नक्षत्र हैं। उनका व्यक्तित्व दूर ही से अपने वर्ण का अजनाद करने लगता है। वे जन्म से ही नहीं कर्म से भी ब्राह्मण हैं, ब्राह्मणत्व उनकी रग-रग में हिलोरे मारता हुआ लगता है।

चौबे जी ने कर्म-काण्ड में अपना सारा जीवन खपा दिया है, जिसकी वजह कि आज वे जन्म से लेकर तो मृत्यु-पर्यन्त तक की क्रिया-कर्म के विशेषज्ञ कहे जा सकते हैं। जन्म, नामकरण संस्कार से लेकर तो मृत्यु पर्यन्त तक की कोई क्रिया ऐसी नहीं जिसमें उनकी आवश्यकता न पड़ती हो।

चौबे जी का पूरा नाम क्या है, यह उनके निकट के लोगों के सिवाय शायद कोई नहीं जानता। चौबे जी नाम से ही उनको अधिकांश लोग जानते हैं। लगता है जैसे जन्म और कर्म दोनों से चौबे होने के नाते उनका नाम दब-सा गया है।

चौबे जी का शरीर भी उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही कहा जा सकता है। उनका लम्बा-चौड़ा, ऊँचा-पूरा डील-डौल भारत जैसे आध्यात्मिक देश की भूमि में बहुत कम ही फलता-फूलता कहा जा सकता है। छः फीट से भी ऊँचा शरीर, दुहरा बदन लम्बे-तढ़ंगे हाथ पैर, भरा पूरा बड़े से कद्दू के समान गोलमोल चेहरा उनके व्यक्तित्व के मुख्य अंगों में से है। तीखी-सी नाक जो आर्य रक्त के अनुरूप है, छोटी-छोटी बिल्ली के समान चमकती हुई आँखें, मोटे-मोटे काल्मिमा लिए हुए होठ, पान की पीक से लाल-लाल दाँत, घुटा हुआ सिर जो दूर ही चे चमकने लगे, मोटी-सी कमर जिसे कि उनके गुरु गम्भीर शरीर को ढोना पड़ता है इन सब विशेषताओं को उनके व्यक्तित्व के गौण अंगों की संज्ञा दी जा सकती है।

चौबे जी की वेश-भूषा भी उनके जन्म और कर्म दोनों के अनुरूप ही है। यों तो वेशभूषा के नाम पर महीन मटमैली धोती ही उनकी एकमात्र साधन है फिर भी समय-समय पर उन्हें चोगे को भी धारण करना पड़ता है। चोगे के बजाए उनकी जेजेऊ ही को

वेशभूषा के नाम पर मुख्य स्थान दिया जा सकता है, जो कि उनके ब्राह्मणत्व के प्रतीक रूप में है। माये पर लम्बा-चौड़ा चन्दन का तिलक और गले में रुद्राक्ष की माला की भी गणना उनकी वेशभूषा के अन्तर्गत ही की जा सकती है। पैरों में पड़ी हुई खड़ाऊँ की ध्वनि दूर ही से उनके व्यक्तित्व की प्रतिध्वनि-सी करने लगती है। चमड़े के जूते चप्पल आदि से उन्हें उतनी ही चिढ़ है जितनी कि मुसलमानों को मूर्तिपूजा से है। वेशभूषा को आधुनिक लोगों की भाँति विशेष महत्व देना उनकी मनोवृत्ति के प्रतिकूल की बात है, जिसका कि मोह उनके जीवन में कभी कोई स्थान कभी भी न बना सका है। इस सम्बन्ध में उनमें दार्शनिकों की-सी उपेक्षा और उदासीनता देखी जा सकती है।

यजमानों की सेवा करना ही चौबे जी की मुख्य रुचि है, जिसे उन्हें हिवकते-भिक्षुकते किसी ने नहीं देखा और फिर यह तो उनकी रुचि ही नहीं जीविको-पार्जन का एकमात्र आधार भी है। यजमानों की दान दक्षिणा, ब्राह्मण-भोजन आदि जीवन के ऐमे कार्य है जिनमें चौबेजी तन, मन, धन से जुट जाते हैं, फिर क्या मजाल जो इनमें किसी प्रकार व्यक्तिक्रम उत्पन्न हो।

सच पूछें तो चौबे जी यजमानों के साध्य के साधन रूप कहे जा सकते हैं। उनके बिना क्या मजाल जो यजमान अपना धर्म-कर्म पूरा कर लें, भूत काल से लेकर तो वर्तमान तक को न जाने कितने चौबेजियों ने उन्हें इस कार्य से वंचित कर रखा है। अतः उन यजमानों के लिए भी उनकी कृपा दृष्टि के सिवाय और कोई राह नहीं रह जाती।

तीर्थयात्रा से लेकर तो स्नान, धर्म, कर्म, दर्शन, पूजा, श्राद्ध, तर्पण आदि जितनी भी धार्मिक विधियाँ हैं वे सब चौबेजी के बगैर अधूरी हैं। उनकी इच्छा के बगैर कर्मकाण्ड की पुस्तकों के बारे पृष्ठ यजमानों के लिए लोह के द्वार सदृश बन्द हैं जिन्हें लाँघ जाना उनके बम की बात नहीं। दान, दक्षिणा आदि धार्मिक विधियों के तो वे आधार-स्तम्भ कहे जा सकते हैं।

यदि किसी ने स्नान किया व उस बीच चौबे जी ने अपनी विधि से उसे पूरा नहीं कराया तो वह अधूरा है, हाथ में पानी ले उन तक दक्षिणा नहीं पहुँची तो वह तीर्थलाभ अपूर्ण है, श्राद्ध में उन्हें न्योता न दिया गया तो वे सब वस्तुएं मृतक तक नहीं पहुँच सकती जिसकी कि उसे आवश्यकता है। पिण्ड दान, गोदान, धनदान, वस्त्रदान, नामदान, भूमिदान सभी के लिए चौबे जी उपयुक्त पात्र कहे जा सकते हैं।

यजमानों की सेवा के पश्चात् चौबे जी की दूपरी रुचि 'भाग' के सेवन की ओर रही है जिसे कि उन्होंने 'भोलेशंकर' की परम्परा से लिया है। इसकी लहर में वे हमेशा यजमानों के साथ ही भगवान से भी लौ लगाए रहते हैं। सच पूछें तो यह तो उनके मन की एकाग्रता के साध्य का माधन मात्र है वरना उसकी सूररी से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। जहाँ तक होता है, या उनका बम चलता है, वे यह शुभ कार्य भी यजमानों पर ही छोड़ देते हैं और ऐमे अवसरों पर उन्हें अच्छी खासी दूधिया छानने को मिलती है। परन्तु इस घोर कक्षियुग में 'शंकर-भक्तों' की संख्या चूँकि दिन पर दिन घटती जा रही है इसलिए ऐमे अवसरों की भी कमी नहीं रहती है जब कि उन्हें इस कार्य को खुद ही अंजाम देना पड़ता है और ऐसे समय उन्हें 'बूटी' पर ही संतोष कर लेना पड़ता है।

स्नानपान के मामले में चौबे जी अपने वर्ग के ही प्रतीक कहे जा सकते हैं। अधिकतर उनका खाना यजमानों पर ही निर्भर है। ऐसे अवसर कम ही आते हैं कि यजमानों के अभाव में उन्हें घर खाने पर बाध्य होना पड़े। चौबे जी के डीलडोल को देखकर ही उनके स्नानपान की सुविधा व सुलभता के सम्बन्ध में अन्दाजा लगाया जा सकता है। दूधिया के ऊपर ही अच्छे खासे खाने का यजमान आयोजन भी कर देता है तो उन्हें जैसे एक राहत सी अनुभव होती है-व उस दिन भाँग की तरंगों में उनका मन विशेष रूप से भगवान् के चरणों में लगने लगता है। एक अजीब सा आकर्षण उन्हें उस आँग न्यींचे लिए जा रहा हो व हो सकता है कि इसी तल्लीनता में उन्हें अमृतस्य व व अनहद नाद की अनुभूति भी होने लगती हो।

चौबे जी को बूटी की तरंग में 'तारडव नृत्य' की

भी परम्परा की भी अनुभूति होती रहती है। परन्तु वे स्वयं नृत्य नहीं करते, देखते भर हैं हालाँकि उनके देखने के नृत्य में व तारडव नृत्य के रूप में काफ़ी अन्तर कहा जा सकता है।

पाश्चात्य देशों की ओर से आई आँधी में बहते हुए युवकों के धर्म-कर्म से हीन संस्कारों को देख आत्म-ग्लानि से चौबे जी का हृदय फटने लगता है और भारत की वर्तमान दुर्दशा का वह उसे एक मात्र कारण कहते हुए पाए जाते हैं। इस धर्महीनता के सम्बन्ध में वे संस्कृत के दो चार उद्धरणों का भी उपयोग करते हैं हालाँकि संस्कृत से उनका इतना ही परिचय है जितना कि राजा जी का हिन्दी से कहा जा सकता है; फिर भी वे संस्कृत के उतने ही भक्त हैं जितने राजाजी हिन्दी के विरोधी।

चौबे जी की शिक्षा वीक्षा के सम्बन्ध में किसी प्रकार का अन्दाजा लगाना सहज कार्य नहीं। तर्क की अपेक्षा "बाबा वाक्य प्रमाणम्" ही उनकी मनोवृत्ति के अनुकूल है। परम्परा से चली आई बातों में किसी प्रकार के व्यक्तिकम को उनके स्वभाव के विपरीत की वस्तु की संज्ञा दी जा सकती है।

जीवन दर्शन का जहाँ तक प्रश्न है चौबे जी किसी भी व्यवहारिक मनुष्य के समकक्ष रखे जा सकते हैं। उनका जीवन, दर्शन की उलभी हुई गुत्थियों में उलझा हुआ नहीं है। वह तो व्यवहारिकता की आँच में तप सोने का निखार प्राप्त कर चुका है। जीवन में व्यवहारिक मनुष्य होने के नाते एक साधारण मनुष्य की मानव सुलभ कमजोरियों से वे वंचित नहीं अपितु उन सभी का समावेश उनके व्यक्तित्व में स्थान बनाए हुए है।

चौबे जी के जीवन को भारतीय परम्परानुकूल कहा जा सकता है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चारों आश्रम उनके जीवन में एक साथ ही कुछ इस प्रकार से घुल मिल गए हैं कि उनके अस्तित्व को अलग-अलग ढूँढ़ना आकाश से तारे तोड़ने के मद्दश है।

चौबे जी भगवान और मनुष्य के बीच की ऐसी कड़ी है जिसे कि दोनों की निकटता के लिए आवश्यक कहा जा सकता है। परमार्थ का मूल मन्त्र उनके

व्यक्तित्व का मुख्य अंग है। तन, मन और धन से वे सकती है और इसीलिए उन्हें यौगिक क्रिया-प्रक्रियाओं जिस लगन के साथ लोकोपकार में दिन-रात लगे रहते के अभाव में भी सच्चे माने में कर्मयोगी की संज्ञा दी जा है, उसे निश्चय ही मन के लिए गौरव की वस्तु कही जा सकती है।

५३ राज मोहल्ला

न्यू राज मोहल्ला पार्टी नं. २

इन्दौर सिटी (म. प्र.)

—मोहन दुबे

महापुरुषों की दृष्टि में राष्ट्रभाषा हिन्दी

हिन्दी के द्वारा मारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

—महर्षि दयानन्द

राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है। राष्ट्र भाषा के बिना राष्ट्र गूना है।

—महात्मा गांधी

भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिन्दी प्रचार के द्वारा एकता स्थापित करने वाले सच्चे भारत बन्धु है।

—योगिराज श्री अरविन्द

मैं दुनिया की सब भाषाओं की इज्जत करता हूँ। परन्तु मेरे देश में हिन्दी की इज्जत नहीं, यह मैं नहीं सह सकता मेरा आग्रहपूर्वक कथन है कि अपनी सारी मानसिक शक्ति हिन्दी भाषा के अध्ययन में लगाऊँ इस यही समझे कि हमारे धर्मों में एक धर्म यह भी है।

—सन्त विनोबा

देश के सबसे बड़े भूभाग में बोली जाने वाली हिन्दी ही राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी है।

—सुभाषचन्द्र बोस

हिन्दी में वह शक्ति है जो देश को एकता प्रदान कर सकती है।

—राजर्षि टंडन

अजय गढ़,

संग्रहकर्ता : श्रीमती सुमित्रा देवी अग्रवाल

प्रौढ़-शाला

पहला दृश्य

(पर्दा मालवे के किसी छोटे से गाँव की प्रौढ़-शाला में उठता है। रात के लगभग आठ बजे हैं। मंच पर एक और एक गैम जलता दिखाई देता है। टाट पट्टी बिछी हुई हैं। एक काला तश्ता भी लगा हुआ है। दालान नुमा कमरे की दीवारों पर एक दो पोस्टर शिक्षा सम्बन्धी टूटी-फूटी हालत में चिपके हुए हैं।

दाईं और बाईं दोनों ओर की दीवारों में दरवाजे हैं।

पर्दा उठते ही एक बीम-बाईस वर्ष के दुबले-पतले, नाटे कद के मास्टर साहब, किसी पुस्तक के पन्ने पलटते नजर आते हैं। वे कभी-कभी इधर-उधर देख लेते हैं। कुछ देर यही हालत रहती है। फिर एक चपरासी दाहिनी ओर से लट्ट हाथ में लिए प्रवेश करता है।)

मास्टर : (फीकी हँसी के साथ) नहीं आया कोई भी, मेरु ?

मेरु : (गर्दन हिलाते हुए) कोई नहीं आया मास्टर साहब। सब लोगो को खूब कहा मगर ...।

मास्टर : एक-दो को तो पकड़ ही लाना था। अगर यही हालत रही तो तेरी और मेरी दोनों की रोजी पर आँच आएगी।

मेरु : तो मास्टर साहब, मैं क्या कहूँ ! मैंने सब के खूब हाथ जोड़े। खुशामद की, समझाया भी, मगर कोई सुने जब कि...वे तो अपना ही रोना रोते हैं। कहते हैं, हम तो थक कर चूर हो गए। हम से अब नहीं

मास्टर : अरे भई, यह तो ठीक है। कल वो, मेरा बाप इन्स्पेक्टर आ रहा है। उसको क्या जवाब दूँगा ?

चपरासी : कोई नहीं पढ़ता तो आप जबदरस्ती पढ़ाने से तो रहें। इन्स्पेक्टर साहब खुद दो-चार दिन स्कूल लगाएँ तो उन्हें मालूम पड़े।

मास्टर : बार-बार मुझ से कैफियत माँगी जा

रही है। दादा तू तो जैसे भी हो एक-दो को तो आज पकड़ ही ला। वो रामा जी तो अभी मुझे रास्ते में मिला था। उसने आने को कहा था। उसे ही धर ला।

मेरु : गया था साब मैं उसके यहाँ भी।

मास्टर : फिर क्यों आ ?

मेरु : शराबियो की मर्हाफिल जमी है उसके यहाँ। कटोरे होठों से लगाए जा रहे थे मैंने उससे चलने को कहा तो वह बोला...

मास्टर : क्या बोला ?

मेरु : कहने लगा, तेरे मास्टर साहब को लेकर यहीं आ जा।

मास्टर : अच्छा छोड़ो उसे। दूसरों ने क्या कहा ? हैंडसिंग, ऊर्दार्ज, रुगाजी, इनको सब मैं कहता हुआ आया हूँ।

मेरु : मास्टर साहब सब बहाने बनाते हैं। कोई नहीं आता।

मास्टर : तू कुछ भी कर। एक-दो तो आज ला ही मही। पुराने नहीं मिलें तो नयों को पकड़ ला।

मेरु : मास्टर साब। मैं तो मारे गाँव में फिर फिर कर तंग आ गया।...अब आप ही...

मास्टर : तो तुम नहीं जाओगे ?

मेरु : मास्टर साब, आप तो मेरे पे नाराज होने लगते हो। ये हरामी आते नहीं और डाँट मेरे पे पड़ती है। बन्दर की बला तबेलो के सर। मेरे यहाँ छोकरी के व्याह में भी मैंने किसी की इतनी खुशामद नहीं की थी। अपने गिरह से इनको बीड़ी पिलाता हूँ, फिर भी साले नखरे...।

मास्टर : (बीड़ी का बराडल जेब से निकाल कर फेंकते हुए) बीड़ी मुझसे ले ले बाबा। तू मेरा मगज मत चाट। किसी तरह से पकड़ ला। दो-चार को बस।

मेरु : मेरे को क्या, मैं और चक्कर लगा आता हूँ। किसी को उठा कर लाने से तो रहा। दस चक्कर भेजोगे तो जाऊँगा। नौकरी करना है साब मेरे को तो।

(मेरु बचकता हुआ चला जाता है) जब तक वह दिखाई देता है तब तक मास्टर साहब कभी नजर से

उम देखा करते हैं। उनके आँखों से आभल हो जाने पर वे फिर पुस्तक पढ़ने की चेष्टा करते हैं। किन्तु दूसरे ही क्षण पुस्तक के फर्श पर फेंक कर टहलने लगते हैं। तभी मेरु वापस आता है।

मेरु : मास्टर साहब मंदिर के सामने, अलाव के आम-पाम अपने तीन-चार लोग बैठे हैं। मैंने खुश कहा मगर वे आ ही नहीं रहे हैं। आप अगर...

(मास्टर साहब चपरासी की बात पूरी सुने बिना ही चल देते हैं। मेरु उनकी पीठ पीछे आश्चर्य से हाथ मटकाते हुवे सीढ़ी सुलगाता है। कुछ देर खामोशी रहती है। फिर नेपथ्य में अस्पष्ट-सी बातचीत सुनाई देती है। और मास्टर साहब तीन प्रौढ़ देहातियों के साथ प्रवेश करते हैं।)

मास्टर : ज्यादा नहीं, तुम थोड़ी देर बैठ जाओ। कल के लिए थोड़ा-सा समझ लो। कल जरा काका लोगो मौका साध देना।

(मास्टर साहब कुर्सी पर बैठ जाते हैं। देहाती सीवार के सहारे बैठ जाते हैं। मेरु जलदी में तीन स्लेट और पेन वगैरा अन्दर के कमरे से ला कर उन्हें देता है। मास्टर साहब हाजरी पत्रक खोल कर हाजरी भरते हैं।)

मास्टर : ऊदा जी।

ऊदाजी : हाजिर साहब।

मास्टर : नग जी।

नगजी : हाजिर साहब।

मास्टर : (तीसरे देहाती से) और हाँ, तुम्हारा क्या नाम है ?

तीसरा देहाती : (अपने दोनों साथियों की और साशय मुस्कराता है। फिर मास्टर साहब से कहता है) म्हारा नाम मत लिखो। मैं पढ़ना नी...

मा० : घबराओ मत। वो तो सारे गाव को ही पढ़ना पड़ेगा। सरकारी हुकम है।... खैर यह तो आगे की बात है। अभी तो काका, तुम कल जरूर आ जाना बस। कल हमारा अफसर आ रहा है। समझे न ? फिर कुछ दिन तुम भले ही मत आना।... हाँ तो तुम्हारा नाम ?

वह व्यक्ति : (हिचकिचाते हुवे) कालू।

मा० : कालू जी, डरने जैसी कोई बात नहीं है। बस तुम कल आ जाना। बाकी मैं सब निपट लूँगा।

(कालू जी, तभी जेब से बीड़ी निकालता है)

मा० : कालू जी, अभी तो तुम मजे में बीड़ी पियो। मगर देखो काका, कल वो हमारे बाप के सामने-जरा हाँ... समझ गए न ?

(कालू जी जेब में बीड़ी वापस रखने लगता है)

मास्टर : (रोकते हुए) अभी पियो-पियो..... अच्छा लो। वो रहने दो। हमसे लो। (जेब टटोलते हैं)

मेरु : (बगडल फेंकते हुए) ये रहा लो।

(तीनों देहाती बीड़ी जलाते हैं)

मास्टर : ऊदा काका, देखो बुझा मत मानना। बात ये है कि जरा अफसर का मामला है इसलिए समझाना पड़ रहा है। नहीं तो अपने को तो सब चलता है। ये जो तुम टाँगें लम्बी कर के (ऊदा जी टाँगें समेटते हैं)... अभी मजे से बैठो। ये तो कल के लिए कहा। अफसर बड़े इरामी होते हैं। जरा-जरा-सी बात में गलती..... अब नग जी ये तुम्हारा पगड़ी में जूँ टटोलना भी...(नग जी पगड़ी पहन लेते हैं)

सब मुस्करा देते हैं)

ऊदा जी : मास्टर साहब, बेफिकर हो। तुमारी... आपकी बात बना देंगे। बात नी। वगड़ने न देंगे हाँ...

नग जी : काल नई बहूँ बगाना पड़ेगा, क्यों मास्टर साब ?

मा० : हूँ... यही समझ लो। (सब हँस देते हैं)

कालू जी : पण क्यों मास्टर साब ये सरकार हमारे पीछे क्यों फजीत होती है ? अब ममाण में तो हडके चले, न अब भण-गुण के करेंगे क्या ?

मा० : (कुछ कहना चाहते हैं, मगर कह नहीं पाते).....

कालू जी : पक्की हड़डी पर भी कदी गार चढ़ती है ?

(तीनों प्रौढ़ और मेरु खूब खुल कर हँसते हैं)

मा० : अच्छा काका लोगों, अब थोड़ी कल के लिए तैयारी कर लें।... हाँ तो नागू काका बहुत दिन बाद आए हो। पहले का कुछ याद है या... ?

नगजी : (मुस्कराते हुए) वो अब अनार का तो लिख दूँगा मास्टर साब। पण वो ई इमली की तो इमली जैसी ग बांकी-चूकी है।

(सब हँसते हैं)

मा० : लिखो तो मही। पहले तो आप ऊ और ऐ तक लिख लेते थे।

नग जी : सब भूल गया मास्टर जी।...ये देखो (पट्टी पर लिखते हुए) अ ठीक है नी ? पण ये ड .. इश की डाली...इधर जाती है के वई ?...भूल गया मास्टर जी।

मा० : हाँ....ये अब इसे अपनी बाई तरफ मोड़ो। ऊँ. .हू...आपने तो नलटी ड बना दी।...ये .. अब सीधी हुई। अब इसे देखो। ..याद रहेगी न ? सीधी तो बात है। पहले नलटे हाथ तरफ, फिर सीधे हाथ तरफ।

नग जी : पेले उलटे हाथ तरफ, फेर सीधे हाथ तरफ। अच्छा मन्तर दिया मास्टर साब। पण ये याद रेजाय रेजाय जद।

मा० : ..सब रह जाएगा याद। (ऊदा जी से) और दो.. ऊदा जी तुम तो काफी आगे बढ गए थे अटक-अटक कर किताब पढ़ने लगे थे। तुम्हें तों सब याद होगा ही ? तुम और राम जी ही तो दो मेरी लाज रखने वाले इस गाँव में।

ऊदा जी : मास्टर साब, ये बात तो ठीक है हा। पण। विया का मामला तो बड़ा टेढा है। जरा छोड़ी के गई... अब मेरे को अपने पे विसवास नी है मैं किताब देख के तो लिख दूँगा। पण...

मा० : कोई बात नहीं ऊदा जी, तुम बेधक लिख देना जो तुम्हें आए।...और भई. हाँ कालू क का तुम अ पर हाथ फेरना। ये देखो मे अ लिख देता हूँ। (उनकी स्लेट पर अ लिखते हैं)

कालू जी . ये क्या बिच्छू बना दिया मास्टर साब ?

(सब हँस पड़ते हैं)

ऊदा जी : ये तीन टोंग का बिच्छू है कालू जी, तुम छे टोंग का मत बणा देना।

मा० : आपको कालू जी, अ अनार का कहते हैं।

ऊदा जी : मास्टर साब, अ अनार का नी कंते हुवे अ बिच्छूवाला के तो जरदी याद करेगा।

मा० : अरे नहीं...नहीं बाबा। तो इन्स्पेक्टर मुझे ला जाएगा। तुम तो बस अ-अनार का ही याद रखना।...और देखो ऊदा काका, वो राम को भी याद रख कर अपने साथ कल जहर ले आना। सुबह

मे भी राम जी से मिलूँगा। तुम भी जरा...हाँ...।

ऊदा जी : के दूँगा मास्टर साब। आणा नी आणा बिनके हाथ है।

मा० : ठीक है वह तो.. पर अच्छा यह तो बताओ इस गाँव में पढ़े लिखे लोग कितने हैं ?

नग जी : देखो—एक ने दो...बम दो जणें हैं। एक तो पुजारी म्दाराज ने दूसरे पटेल।

ऊदा जी : ने एक और गणपत जी हैं।

कालू जी : हाँ. भारी याद आई। वे तो अपनी सई कर लेते हैं।

मा० : वे अपना नाम लिख लेते हैं ?...तो... तो मेरु .. ?

मेरु : हा माट साब।

मा० : उनको अभी बुला क ला।

कालू जी : पण वे तो सबू मे उनके सुसराल लिए हैं।

मा० : सुसराल गये हैं ?...कल तक लौट आयेंगे ?

ऊदा जी : के नी पकते। दो दिन बी लग जाय चार दिन बी लग जाय।

नग जी : देखो, कल तो वे किसी हालत में नी आ सकते। वे कल का हाट बाँज का करेंगे।

मा० : जारे भैस पानी में... खैर पुजारी जी को मे समझा लूँगा। पाँच छे वियाथी हो जाय तो बेड़ा पार समझ लो।

ऊदा जी : तो फेर अब चले मास्टर साब ?

मा० : हाँ आ-अच्छी बात है। मगर देखो कल आना मत भूल जाना। कल मेरी परीक्षा है।

तीनों : याद है मास्टर साब।

मा० : तुम्हीं लोगो के भरोसे है ये नैया।

तीनों : बेफिकर रो राम राम।

मा० : राम राम (तीनों देहातियों का प्रधान) मेरु।

मेरु : हाँ साब।

मा० : ये सब समान रख दो। अपने जरा गाँव का चक्र लगायेंगे।...ये गैस भी बुझा दो।

(तभी शर्मा मास्टर बाई और से हँसते हुए कहते हैं)

शर्मा : हैं-हैं मेरु गैस मत बुझा देना। नमस्ते व्यास जी।

मास्टर : नमस्ते शर्मा जी !...यार देखो रोज-रोज की धौधली मेरे को पसन्द नहीं। किसी ने चुगली कर की तो मेरी मुश्किल हो जायगी। दो दिन मुरब्बत पाल ली तो तुम तो रोज सताने लगे।

शर्मा : मास्टर साहब, तुम तो यार फिजूल नाराज होने लगते हो। तुम पे ऑँच आ जाय तो हमारा सर काट लेना और क्यों ! मास्टर साहब जब सरपंच साहब, हेड साहब वगैरा-वगैरा साहब ही हमारे साथ पते खेल रहे हैं तो फिर डरने...

मा० : उसे क्या यार वो मेरे बाप ने रिमार्क लगा दिया है इस बार कि तुम्हारे यहाँ तैल का खर्चा बहुत होता है।

शर्मा : अरे तो इस में डरने की क्या बात है ? इससे तो उन्हें मालूम पड़ेगा कि तुम्हारे यहाँ शाला बड़े जोरो शोरों से चल रही है।

मा० : क्या खाक चल रही है !

शर्मा : हाजरी पत्रक मालिक पत्रक वगैरा। तो वे लोग देखते ही नहीं होंगे। यार अब उसके लिए क्या कहूँ। तुम तो सतजुगी आदमी बनते हो। तुम्हें कितनी बार समझाया मगर तुम सुनते ही नहीं हो।

मा० : शर्मा जी सुनूँ क्या ? मैंने ऐमे काम जिन्दगी में कभी किए नहीं। कान्शन्स गवाह नहीं देती।

शर्मा : कान्शन्स को मारो गोली.. मैं सब ठीक-ठाक कर दूँगा। तुम खाली ऑख मीच कर सही कर देना बस। मास्टर साहब वक्त पढ़ने पर मसी कुछ करना पड़ता है। मसी करते हैं। ..अच्छा अब आप ही कहो, कोई पढ़ने नहीं आता तो आपका इसमें क्या कसूर है ? आप अपना कर्तव्य तो कर रहे हो न ? मैं यह तो नहीं कहता कि आप अपना कर्तव्य मत करो। मगर देखो कर्तव्य के साथ-साथ अपनी रोजी का भी ख्याल रखो। मचाई पर जो कायम रहोगे तो अधिकारी तुम्हें अयोग्य प्रमाणित कर देंगे। इसलिए भैया मेरा कहना मानो और...

मा० : शर्मा जी, अपने से तो यह नहीं होगा। मैं तो कल ही इन्सपेक्टर के आने पर सारी स्थिति स्पष्ट कर दूँगा। इन पिछले तीन महीनों में मैं तो तंग आ गया हूँ। तीन साल से अध्यापकी कर रहा हूँ मगर ऐसा समय कभी नहीं आया था। तुम्हारी तरह रेग्यु-

लर विद्यार्थी हों तो पढ़ाया और छुटी हुई। मगर यहाँ तो समस्या ही बढ़ी टेढ़ी है। कोई पढ़ना ही नहीं चाहता।

शर्मा : कोई समस्या नहीं है। बिलकुल सीधी-सी बात है। वेतन लो और मस्त रहो। सरकार के दामाद बनो दामाद।

मा० : मेरे से यह नहीं होगा शर्मा जी। यह वेतन मुझे इराम का लगता है। यदि यही हाल रहा तो मैं सब में त्यागपत्र दे दूँगा।

शर्मा : इससे क्या होगा ? तुम्हारी जगह तुम्हारा कोई दूसरा भाई आया। वह यही करेगा। तुम्हारे जैसा हरिश्चन्द्र हर एक नहीं होता।

मा० : हरिश्चन्द्र नहीं... मैं जरा डरपोक किस्म का व्यक्ति हूँ। मेरी आत्मा का हनन...

शर्मा : आत्मा का हनन ! ये कविता तुम्हारी तुम्हारे ही पास रहने दो। मेरा कहना मानो। मजे करोगे मजे मास्टर साहब। ...अरे मेरे ये गैस वहाँ सरपंच साहब के यहाँ रख आ तो।

मा० : नहीं शर्मा जी, अब मैं गैस नहीं ले जाने दूँगा।

शर्मा : यार, तुम तो बहोत ही अकड़ रहे हो। तैल हम से ले लेना और क्या ?

मा० : तैल की बात नहीं है शर्मा जी... कल वो इन्सपेक्टर आ रहा है।

शर्मा : मालूम है। ...घबराते क्यों हो ? मैं सब संभाल लूँगा। ...ले चल मेरु।

मेरु : ले जाऊँ माट भाव ?

मा० : ले जा भैया। अब इनको कैसे इनकार करूँ ? ...मगर देख जल्दी आना। गाँव में चलना है। दो-चार जनो को कल के लिए मन्तर देंगे।

(मेरु और शर्मा का प्रस्थान। पर्दा धीरे-धीरे गिरता है।)

दूसरा दृश्य

(पर्दा उसी प्रौढ़-शाला में फिर उठता है। मंच पर गैस जलता नजर आता है। नेपथ्य में अस्पष्ट-सी बात-चीत सुनाई देती है। फिर मास्टर और शर्मा सिगरेट पीते हुए प्रवेश करते हैं।)

शर्मा : बस... फिजूल हाय-हाय मचा रहे थे। कोई नहीं आया देख लिया ? ये गैस है, इसे पढ़ाओ।

(दोनों हँस देते हैं)

मा० : ये मेरु कहाँ गया ?...मेरु...?

(कोई उत्तर नहीं मिलता है।)

शर्मा : होगा यही कहीं मास्टर माहब यार जो बुरा नहीं मानो तो एक बात कहूँ ?

मा० : फर्माओ।

शर्मा : ओ साला इन्सपेक्टर कल आया नहीं, इस खुशी में आज यही जमे एक-दो वाजी ? .. आज सरपंच माहब भी वाहवा गये हैं इसीलिए..।

मा० : तुम मुझे भगवाओगे यहाँ से ?

शर्मा : नम यार तुम्हारी यही बात बुरी लगती है। तुम मुझे अभी तक पहचाने नहीं हो। तुम्हारा यदि बाल भी बाँका हो गया तो मैं जान दे दूँगा समझे ?

मा० : यार माट साब, मैं तो पाँच रुपये के लालच में ! फजूल आ मरा यहाँ। वहाँ मजे में पड़ा था।

शर्मा : यहाँ क्या मजे में नहीं हो ? वहाँ से यहाँ आराम में हो मास्टर माहब। बस जरा तुम टेकट से काम लो हौं...

मा० : (मुस्कराते हुए) टेकट-वेकट तो सब मैं जानता हूँ। मगर यहाँ आराम को वह शान्ति नहीं मिलती। दिल उचटाना-उचटा सा रहता है। ...अगर

मेरा ट्रम्पफर नहीं हुआ तो मैं...सच मैं त्याग-पत्र दे दूँगा।

शर्मा : यार तुम तो जब देखो तब त्यागपत्र-त्यागपत्र ही रटा करते हो। मस्त रहो। सब कुछ भूल जाओ। तुम्हारा गम गलत करने के लिए ही तो मैं तुम्हें खेत में नलभाना चाहता हूँ। ..ओ मेरु अभी तक नहीं आया ?

मेरु : (नेपथ्य से) आग या माट साब (आते हुए) दूध लेने गया था साब।

शर्मा : दो-एक बागडू पकड़ ला मेरु। आज यही रहे (हाथ से ताश पीसने का संकेत करते हुए) हौं.....।

मेरु : अभी आया माट साब। मन्दिर के पास ही तीन-चार डटे हैं। एक मिनिट में आया।

मा० : पढ़ने कोई आया था मेरु ?

मेरु : कोई नहीं आया माट साब। मैं दूध लेने गया तब सब दूर बोलता गया था।...फिर क्या अब

जाऊँ ये माट साब कह रहे हैं...।

शर्मा : अरे हौं...हौं...जा बार-बार पूछता क्या है ?

(मेरु का प्रस्थान)

मा० : यार गाँव का कोई चुगली न कर दे।

शर्मा : चुगली करने वाले की ऐसी-तैसी। गाँव के एक-एक को जानता हूँ तीन बरस हो गए हैं मुझे यहाँ। अपने में कोई दुम नहीं हिला सकता। मैं जैसा कहूँ वैसा करोगे माट साब, तो यहाँ मौज करोगे मौज।

मा० : अच्छा दादा।

(मेरु का ऊदा जी और नग जी के साथ प्रवेश)

ऊदा जी, नग जी : राम-राम मास्टरसाहब।

मा० : राम-राम...ले मेरु, पट्टी-कलम निकाल।

ऊदा जी : क्यों रे भैया ? हमारे से ये दगा ?

शर्मा : (ऊदा जी का हाथ पकड़ते हुए) बैठो तो मही... दगा-वगा कुछ नहीं है। ये तो मजाक कर रहे हैं। तुम क्या सच समझ गए ?

नग जी : सच क्या...हमारी तो जान ही निकल गई थी समझो। कल मास्टर साब ने दो-तीन घण्टे की सजा दी थी। हमने कहा आज फिर फँसे।

ऊदा जी : ये मेरु बोलया के वां तो पत्नी जमेगा... जब हम आये नी तो हमने तो वां सेज हाथ जोड़ लिए थे। (मास्टर शर्मा जी को सम्बोधित कर) पर कल तो आपने भारी दुःख दिया मास्टर साब।

नग जी : बहू सरीखे काने माने (गुपचुप) बैठे-रिए। ने कोई आया ने गया। ये मास्टर साब तो यूँ डर दिए थे।

ऊदा जी : बाप रे बाप कल कितनी तैयारी करी। मेरु की कल खामो कवाद परेड हुई। ये मफ़ई करो। बोर्ड पे पोता फेरो।

नग जी : अपनी क्या कम कवाद परेड हुई नग जी, यूँ टाँग लम्बी करके मत बैठना हो कालू जी, बीड़ी मत ! सलगाना। राम जी, जिता पूछे उता बोलना। मेरे इशारे को देखते रेणा। सब (हँस-पड़ती है)

शर्मा : बस करो अब तो काका। अब तो एक दो बाजी उड़ जाय ?

नग जी : आ जाओ, मैं कोन डरता है।

शर्मा : अच्छा तो रही काका, आठ आने वाजी?

नग जी : ६पया बानी । गामड़े वाले समझ के डरते हो ?

मा० : देखो भई, जुँवा तो मैं यहाँ नहीं होने दूँगा। दिल बहलाव क लिए मैंने इजाजत दे दी तो तुम तो...।

शर्मा : यार मास्टर साब, तुम तो बिलकुल फकी आदमी हो। जुँवा कौन साला खेल रहा है। हमें भी कुछ थोड़ी अकल तो है।...ये तो हमारी और काका की अकल चन्ती है। तुमसे पैसे रखवाँय तो कहना...। ले भेर, एक पेकेट सिगरेट पटेल क यहाँ से मेरा नाम ले के लाना तो।

(भेर का प्रस्थान। चारो गैस के नजदीक जम जाते हैं शर्मा जी जेब से तास निकाल कर पीघते हैं।)

नग जी : हम कोई गामड़े वाले को ही भिड़ू बनाएँगे ?

जुदा जी : बणाएँ दो। क्यों डरते हो ?

नग जी : यों कोण डरता है। एक बात की वो तो। अब गामड़े वाले शहर वाले के कान काट सकते हैं।

शर्मा : अच्छा-अच्छा कान फिर काटना। पहले तुरुप बोल तो घबरा के।

नग जी : घबराओ तुम, हम नी...अच्छा तुरुप हुकुम सई।

(तभी नैपथ्य में बैलगाड़ी के रुकने व कुत्तों क जोर-जोर से भौकने का स्वर सुनाई देता है।)

शर्मा : कोट पढ़न लो का-का, अब की।

नग जी : अरे जाव जा। कोट तुमज पढ़नो। हम कोट-फोब को क्या करें ? रात भर घड़ी पीसे जाव आज तुम।

जुदा जी : आज उठणे नी देगे साट साब।

शर्मा : खुद ही उठ कर भागोगे देखो तो सही। पत्ता चलो पत्ता।

जुदा जी : हाँ हाँ ये राणी चली हमने

शर्मा : तो ये राजा हमारा।

(तभी एकाएक मझले कद के इन्स्पेक्टर साहब प्रवेश करते हैं। वे दाईं ओर क दरवाजे में ही ठिठक जाते हैं। ये चारों खेल में मशगूल रहते हैं।)

नाग जी : ये राजा का बाप...एक्का

मा० : और ये उसका भी बाप

इन्स्पेक्टर : (ताली बताते हुए) शाव!श राजा) के बाप के बाप।

(चारों चौककर उस ओर देखते हैं। मास्टर के हाथ में मे पत्ते छूट पड़ते हैं। चेहरा फक हो जाता है। शर्मा जी सब के पत्ते बटोर कर जेब में रख लेते हैं। जुदा जी व नग जी किनारे की ओर स्वयं क जाते हैं। शर्मा खड़ा होकर नमस्ते कहता है मास्टर जी सुध-बुध खोये से गुमसुम बैठे रहते हैं।)

इन्स्पेक्टर : नमस्ते मास्टर साहब...आपकी शाला की प्रगति देखकर बड़ा संतोष हुआ। ऐसी अच्छी जगह से आप ट्रान्सफर क्यों मांग रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आया।

फुर्ता से उठकर अन्दर के कमरे में कुर्सी लाते हैं।

इन्स्पेक्टर (कुर्सी पर बैठते हुए) आपकी शाला के लिए घाम लोट तो मच में अधिक देना चाहिए। अब मेरी समझ में आ गया।

मा० : (नीचे नज़र किए कहते हैं) देखिए साहब...आज जरा गाँव में कथा है। इसलिए विद्यार्थी आए नहीं.....

इन्स्पेक्टर : तो आप ताश खेलने बैठ गए। अच्छा किया आपने। क्या दर्ज है इममें, खेलिए न आप लोग ? बन्द क्यों कर दिया आप ने खेल ?

मा० : (कुछ देर की खामोशी के बाद) आज पहली बार यह गलती हुई। मैं कभी ताश को हाथ नहीं लगाता हूँ।

शर्मा : असल बात तो यह है सर किये दो-एक विद्यार्थी बच गए थे। बाकी सब आज लुट्टी लेकर चले गए। इन्होंने मास्टर साहब से ताश खेलने के लिए जिद की तो ये नेचारे आज बैठ गए। मुझ भी इन्होंने पकड़ लिया।

इन्स्पेक्टर : (घड़ी देखते हुए मास्टर से) अभी तो साढ़े सात ही बजा है ? आपकी शाला का समय क्या है ?

मा० : यही सात से नौ।

इन्स्पेक्टर : आपने इन दोनों को ही पढाना था ?

मा० : जी, ये राजी ही नहीं हुए। मैंने इनसे खूब कहा। क्यों नागू काका, बोलते क्यों नहीं ?

नागू जी : किया तो था साब पण.....

शर्मा जी : दो जनों में इनका मन नहीं लगा

इसलिए। यही बात थी न ? (आँख से नागू जी को संकेत करते हैं)

नागू जी : (वमझते हुए) हाँ, ये ही बात थी। मन नी लगा साब।

इन्स्पेक्टर : तो आप यहाँ रोज पढ़ने आते हैं ?

नग जी : बगैले झोंकने लगते हैं। शर्मा खौपता है) रोज तो नहीं पर आते रहते हैं। मढ़ने में जितने दिन बण जाता है।

(मेरु का प्रवेश। शर्मा लपक कर उसके हाथ में से पेकेट लेता है। पेकेट खोल कर इन्स्पेक्टर क सामने पेश करता है)

इन्स्पेक्टर . थैक्यू—असी नहीं। (शर्मा पेकेट रख लेते हैं) तो आप तो काफी सीख गए होंगे ?

(नग जी खामोश रहते हैं)

इन्स्पेक्टर : क्यों साहब.. बोलिए न ?

नग जी : (हलकाते हुए) साब . पेज...जादा क्या। ये माट साब ता भात मेहनत करते हैं। पण हमारा मगज नी चलता साब। पक्की हाडी पर बी कही गार चढ़ती है !

इन्स्पेक्टर : आप कैसी बातें करते हैं ? प्रयत्न करने से सब हो जाता है "करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान, रसरी आवत जात ते सिल पर परत निशान" रस्सी पंथग को काट देती है समझे ? . क्या नग जी नाम है न आपका ?

नग जी : हाँ साब।

इन्स्पेक्टर : हाँ तो नग जी वा, निराश होने की जरूरत नहीं है। प्रयत्न करते रहिए...कुछ तो नमूना बताइए आप की प्रगति का।

मा० : मेरु, पट्टी कलम निकालो।

(मेरु पट्टी-कलम निकाल कर लाता है। दोनों अनिच्छा से लेते हैं।)

इन्स्पेक्टर : और हाँ (ऊदा जी से) आपका क्या नाम है ?

ऊदा जी : ऊदा जी।

इन्स्पेक्टर : तो ऊदा जी, आपने कहाँ तक सीखा है ? किताब तो पढ़ लेते होंगे आप ?

ऊदा जी : (शरमाते हुए) अरे नी साब। बारा-खड़ी तो अच्छी तरे असी आती नी है। किताब क्या पढ़ेंगे...और देखो साब, मच्छी बात तो ये है कि ये

रोग हमारे बम का नी है। अब मसाण में तो हक्के चले अब भण-लिख के क्या करेंगे ?

इन्स्पेक्टर : पढ़ाई कसी अकारथ नहीं जाती ऊदा जी। और फिर असी कौन कह सकता है कि आपके दिन करीब आ गए। भगवान् चाहे तो आप असी वीस-पच्चीस वर्ष से भी ज़्यादा निकाल सकते हैं।

(सब हँस पड़ते हैं)

इन्स्पेक्टर : हाँ...तो जो तुम्हें आता हो वह हमें लिख कर बतलाओ तो। नग जी वा.. देखूँ ज़रा क्या लिखा ?

(नग जी अपनी स्लेट देते हैं)

ऊं...हूँ...यह क्या लिखा आपने ?

नग जी : अ...अनार का और इ इमली की है साब।

इन्स्पेक्टर : अ तो ठीक है नग जी, पर ये ई आपने.....

नग जी : अरे हाँ भारी याद आई.....पेलाँ इमली की डाखी इधर मोड़ना था।

(इन्स्पेक्टर खल कर हँसते हैं)

इन्स्पेक्टर : हाँ तो ज़रा इन डालियों का बराबर ख्याल रखा कीजिए।.. मास्टर जी हाजरी पत्रक कहाँ है ?

मा० : ये रही साहब। (डेस्क में से निकाल कर देते हैं)

इन्स्पेक्टर : हूँ...तो आपकी शाला में कुल बारह विद्यार्थी ही हैं ?.. और औसत हाजरी बस चार-पांच ? तीनों गाँवों की जन संख्या क्या है ?

मा० : जी यही सात सौ के करीब होगी।

इन्स्पेक्टर : जिनमें कम से कम दो सौ हाई सौ प्रौढ़ पुरुष तो होंगे ही ?...यहाँ उसमें से बारह ही भर्ती हुए हैं ?...तीन माह में आपने यही प्रगति की मास्टर जी ?

मा० : मेने भरसक प्रयत्न किए साहब। मैं घर-घर घूसा हूँ। आप गाँव वालों से तलाश कर लीजिए। इससे अधिक भला मैं क्या कर सकता हूँ ? यदि आपको मुफ़ पर विश्वास न हो तो आप मेरा ट्रांसफ़र कर दीजिए। मैं सबसुच तंग आ गया हूँ।

इन्स्पेक्टर : (मास्टर का कंधा पकड़ते हुए) मिस्टर मास्टर, तीन महीने में ही चबरा गए ? बनी

राह पर तो दर कोई नल लेता है। ऊबड़-खाबड़ धरती पर राह बनाने में ही गौरव है। इन्टरव्यू के समय तुमने मुझसे षड़ी-बड़ी बातें कही थीं। वे सब क्या भूल गए? तुम्हारा देश-प्रेम, देहात में काम करने की उत्सुकता क्या नौकरी प्राप्त करने का बहाना मात्र थी?

मा० : (हँसे करत में) सर, मैं काम से घबराता नहीं हूँ। मुझे आज भी वे सब बातें याद हैं। मगर काम हो तब न? यहाँ तो काम नहीं होने के कारण मैं घबरा गया हूँ।

इन्स्पेक्टर : क्यों, काम क्यों नहीं है? काम का तो यह पड़ाइ पड़ा है। गाँव के सारे प्रौढ़ों को तुम्हें साल दो साल में साक्षर बनाना है।

मा० : यह मुझ से नहीं हो सकता। विद्यार्थी शाला में आएँगे तब ही मैं पढ़ा सकूँगा। केवल शालाएँ खोलने से और मुझ जैसे अनुभवहीन छोकरो को बैठाने से यह काम नहीं हो सकता। प्रौढ़-शिक्षा एक गम्भीर समस्या है। इसकी अपनी विशेष परिस्थितियाँ हैं।

इन्स्पेक्टर : राष्ट्र के कर्णधार इस पर गंभीरता से विचार कर रहे हैं। तुम्हें इस तरह हिम्मत नहीं हारना चाहिए। तुम्हारी दिकतों से सरकार अनभिज्ञ नहीं है।

मा० : मगर सर...

इन्स्पेक्टर : मगर-वगैर कुछ नहीं। डटकर काम करो। अपनी वाजिब दिकतों से सरकार के सामने रखो। तुम्हारे पढ़ाने में ऐसा आकर्षण पैदा करो कि लोग खिचे चले आए। कुछ अपनी मौलिकता बताओ। समझें न...? (ऊदा जी से) और हाँ मैं आपको तो भूल ही गया। बताइए आप आपकी स्लेट।

ऊदाजी : (स्लेट देते हुए) पले पूरी बारा खड़ी खिन्न लेता था। अब तो भूलणें लगा भाब।

इन्स्पेक्टर : फिर भी आपने काफी लतल लिया। एक दो अच्छे रह गए। आप शायद रोज शाला नहीं आते हैं। बराबर आइए, फिर क्या मजाल जो आप भूल जाँय।

ऊदा जी : क्या आर साब, करभाणी कमर तोड़ देती है।

इन्स्पेक्टर : थोड़ा कष्ट तो उठाना होगा भाई। पढ़ाई को आप भार क्यों समझते हैं? उसे भी ताश

के खेल जैसा या नग जी वा की तरह इमली की डाल से खेलना ही कहिए। बस ऐसा ही खेल रोज खेला करो यहाँ।.....और जो ये मास्टर साहब आपके साथ मेहनत नहीं करें तो हमसे कहो।

नग जी : ये तो मेहनती हैं साब। हम ज जी चुगते हैं।

इन्स्पेक्टर : तो अब ऐसा मत कीजिए। और लोगों को लाइए अच्छा भाई तो मैं चले अब। मास्टर आप घर आइए मत।...मगर हाँ इन शर्मा जी में बचकर ही रहना। इनसे गुरुमंत्र मत ले लेना।

शर्मा : मैं क्या गुरुमंत्र दूँगा साहब।

इन्स्पेक्टर : मैं तुम्हें अच्छा तरह जानता हूँ।

मा० : सर भोजन तो करते जाइए। अब रात को कहाँ जाएँगे?

इन्स्पेक्टर : नहीं भाई। पास ही गाँव में मेरे एक रिश्तेदार हैं। वही ठहरेंगा।

मा० चाय तो पीते जाइए।

इन्स्पेक्टर : बस थकवा।

शर्मा : सर सिगरेट.....।

इन्स्पेक्टर : अच्छा, लाओ मास्टर शर्मा। ...मगर होशियार रहना। मैं तुम्हारे स्कूल में भी न जान कब आ टपकूँगा। तुम खूब शहर के चक्कर मारते हो।

शर्मा : नहीं साहब..मैं तो शहर कभी जाता ही नहीं हूँ।

इन्स्पेक्टर : अच्छा...अच्छा देखेंगा।

(साहब का प्रस्थान। मंच खाली हो जाता है।) नेपथ्य में नमस्ते और राम-राम के साथ गाइों के चहने की आवाज आती है। इन्स्पेक्टर के अलावा सब वापस लौट आते हैं।

शर्मा : कहो मास्टर साहब, कहता था न तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं हो सकता। साला मेरे भारे घबराता है। ज्यादा गड़बड़ करता तो यहीं एक-दो दचकनी देता।

नग जी : बड़ा रेंट है। कल नी आया आज आ धमका।

मा० : मुझे डर है एकप्लेनेशन जहर मॉर्गेगा। रिकार्ड खराब कर देगा। मीठा ठग है।

शर्मा : साला कुछ नहीं कर सकता...लो आबो जमो यार। साले ने एक बाजी भी नहीं होने दी।

मा० : बस दादा, अब तो दया करो । मैं माफी नहीं हूँ ।
चाहता हूँ ।

शर्मा : मास्टर साहब... ..

शर्मा : अच्छा-अच्छा बाबा जाते हैं । नाराज तो मत होवां ।

मा० : बस अब मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता ।

(शर्मा, नग जी और ऊदा जी का प्रस्थान)

ये खेल-वेल अब यहाँ नहीं चलेगा ।

मा० : मेरे, जाओ तुम्हारी भी छुट्टी । गैस

शर्मा : यार खेल से भी पढ़ाई होती है । ताश के जरिए प्रौढ़ों को गिनती सिखाना चाहिए । उनसे सम्पर्क साधना चाहिए ।

बुझाते जाना ।

(मेरे गैस दूसरे कमरे में ले जाता है । पर्दा धीरे-धीरे गिर जाता है)

मास्टर : देखो शर्मा जी, मैं मञ्जक के मूँच में

५६, रावजी बाजार,
जूनी इन्दौर

—चन्द्रशेखर दुबे

दखनी सुभाषित

ऐ चतर सुजान,
इन्सान को नहना नको जान
अगर खुदा कूँ पछानने मँगता है
तो इन्सान कूँ पछान

इधर-उधर देखकर क्या होता अजब,
अपस में देख,
कि तुझ में च है सब

दरिया होकर बैठे कोई
तो वहाँ अपै गोहर पैदा होई

अवल नाम
आखिर नाम
सब कूँ नाम मूँच है काम

जिने भूक-प्यास में बोधया घर
उसे क्या डर ?

“सबरस” से संशुद्धित

हैदराबाद

संप्रद : ललित। देवी

प्राचीन शिला-लेखों में संस्कृत भाषा

शिला-लेख वह रचना है, जो कि पाषाण, शिला और ताम्बे के पट्ट पर तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति की शाश्वत स्मृति के उद्देश्य से अंकित की जाती है। संस्कृत भाषा में अंकित भारत का प्राचीनतम शिला-लेख रुद्रदामन् का गिरनार शिला-लेख (१५० ई.) है। शक चत्रप रुद्रदामन् का यह लेख अपनी शैली की रोचकता, भावप्रवणता तथा हृदयावर्जन के हेतु एक लघुकाव्य गद्यकाव्य का आनन्द देता है। यथाप मेक्समूलर ने अपने 'काव्य के पुनर्जागरण' के सिद्धान्त में विक्रम की आदिम शताब्दियों को संस्कृत-काव्य की घोर निशा का काल बताया है। विक्रम की प्रारंभिक चार शताब्दियों में विदेशी शकों के प्रबल आक्रमणों के कारण भारत की आन्तरिक दशा नितान्त अशान्त थी। साहित्य-रचना के लिए आवश्यक शान्त वातावरण की छाया भी इस समय उपलब्ध नहीं—समस्त: इसीलिए मेक्समूलर ने इस काल को संस्कृत-काव्य का तिमिर-काल बताया है तथा गुप्तकाल में काव्य का पुनर्जागरण मान कर विक्रम की आदिम शताब्दियों को कविता के अभाव का युग माना है।

परन्तु प्रकाशित शिला-लेखों के गहरे अध्ययन से यह सिद्धान्त पूर्णतया अशान्त, निराधार तथा त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। डा० ब्यूलर ने सिद्ध किया है कि इस युग में भी कमनीय स्तुति-काव्यों की रचना होती थी; दानी राजाओं की कीर्तियाँ और उनके प्रशस्त प्रशस्ति-काव्य इस बात का प्रमाण हैं।

रुद्रदामन् का गिरनार शिलालेख १५० ई० : काठियावाड़ में स्थित जुनागढ़ में गिरनार पर्वत की पूर्वी सीमा से एक मील दूर यह शिलालेख उद्भूत है। इसी शिला पर अशोक के चतुर्दश लेख तथा गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त का भी एक विशाल लेख खुदा है। रुद्रदामन् का शिलालेख प्रांजल, सुसंस्कृत गद्य का एक सुन्दर उदाहरण है। अर्वाचीन आलेकारिक दसवीं की यह उक्ति 'भोजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' सड़खों वर्ष पूर्व लिखित जुनागढ़ के इस शिलालेख पर

पूर्णतया चरितार्थ होती है। पौंच सौ वर्ष पूर्व लिखे गए इस लेख को पढ़ने से ज्ञात होता है कि मानों हम बाण की शैली में प्रभावित गद्य पढ़ रहे हैं।

शक, चत्रप 'रुद्रदामन्' स्फुट, लघु, मधुर, चित्र, कान्त, शब्द समय-संपन्न, उदार तथा अलंकृत गद्य, पद्य की रचना में पवीण बताया गया है—

‘...स्फुटलघुमधुराचत्रकान्तशब्दसमयोदारालंकृत गद्य पद्य प्रमाणमानोन्मानस्वरगति वर्णभार सत्वादिभिः परमनृणां व्यञ्जनैरुपेतकान्तमूर्तिना’—

गद्य लिखने का यह ढंग अत्यन्त परिष्कृत है। प्रस्तुत लेख में संस्कृत भाषा के गद्य-काव्य का अत्यन्त उत्तम रूप हमें दर्शित होता है जो नितान्त श्लाघनीय है। गद्य-पद्य के गुणबोधक शब्दों का इसमें आद्यन्त प्रयोग हुआ है।

रुद्रदामन् की विशेषताएँ—‘अष्टराजप्रतिष्ठापकेन, यथायथोद्भूतयुजितो जितधर्मा नुरागेण, शब्दायगान्धर्व-न्यायायानां विद्यानां महतीनां पारणधारण विज्ञान प्रयोगा-वाप्त विपुलकीर्तिना,.... हमें बाणभट्ट द्वारा रचित महाराजा हर्ष के चरित-वर्णन का स्मरण सहज ही करा देती हैं।

हरिषेण की समुद्रगुप्त प्रशस्ति : ३५० ईस्वी कविद्वय द्वारषेण की यह प्रशस्ति समुद्रगुप्त की दिव्यजय का वर्णन गद्य-पद्य के मिश्रित अति ओजस्वी भाषा में करती है। इस लेख का पद्य त्रिपद प्रकार अत्यन्त काव्यात्मक और सुन्दर है उसी तरह गद्य भी प्रौढ़ समासबहुल तथा उदात्त है। प्रयाग में अंकित यह प्रशस्ति चम्पू काव्य का प्राचीन और उत्कृष्ट उदाहरण है। विजयस्तम्भ ने वर्णन में गद्य में काथत कवि हरिषेण की यह उक्ति नितान्त चमत्कारक है।

...“सर्वैर्पृथिवी विजयजानतो दयव्याप्तिनिखिला-वन्तित्वा कीर्तिमितास्त्रदशपतिभवनगमनावाहालालित-सुखविचर्यामचच्छाण इव भुवो बाहुगयमुच्छ्रितः स्तम्भः।”

अर्थात् समस्त पृथिवी की विजय से उत्पन्न तथा संपूर्ण पृथिवी-मण्डल में व्याप्त कीर्ति को इन्द्र से कहने के लिए मानो यह धरा का बाहु ही स्तम्भरूप में उठा हुआ है।

गय के साथ ही साथ इस लेख का पथ भी उतना ही भावप्रवण है—

“प्रदानभुजविक्रमप्रशमशास्त्रवाक्योदये
स्वयुपरिमद्योच्छ्रितमनेकमार्गं यशः
पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेऽर्जुनान्तर्गुहा—
निरोधपरिमोक्ष शीघ्रमिव पाण्डु गाङ्गं पयः”

अर्थात् दानी, विक्रमी और शास्त्रज्ञ होने के कारण या उनके गुणों से निःसृत समुद्रगुप्त का यश ऊपर-ऊपर संचित होकर अनेक मार्गों में फैल गया और अब वही यश, शिव जी की जटाओं में ठहरकर छोड़ी गई श्वेत गंगा के जल के समान, तीनों लोकों को पवित्र करता है।

वत्सभट्टि की मन्दसौर की प्रशस्ति : संस्कृत-काव्य के दृष्टिकोण से यह शिलालेख उत्कृष्ट कोटि का है। काव्यरत्नसमूह पर कालिदास का बहुत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रशस्ति में दशपुर नगरी का वर्णन पढ़ते समय ऐसा ज्ञात होता है कि हम महाकवि कालिदास का अमर काव्य ‘उत्तरमेघ’ पढ़ रहे हैं। शिलालेख का यह श्लोक :

“चलत्पताकान्यबलासनाया
न्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्मतानि
तडिल्लोचित्रसिताभ्रकूट
तुल्योपमानानि गृहाणि यत्र”

‘मेघदूत’ के निम्नलिखित श्लोक से बहुत साम्य रखता है :

“विद्युत्स्वन्तं ललितवर्णताः सेन्द्रचापं मचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्ध-गम्भीर-बोधम्
अन्तस्तोयमणिमयभुवस्तुल्लभप्राज्ञिहाप्राः
प्रामादास्त्वा तुलायतुलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः”

यह प्रशस्ति नाना छन्दों में निबद्ध ४४ पद्यों में है। दशपुर का वर्णन कवित्व पूर्ण है और काव्य कला के विकास का पर्याप्त बोधक है। इस शिलालेख में संस्कृत भाषा का वही उत्कृष्टतम काव्यात्मक रूप हम पाते हैं, वसी-वर्णन पद्धति का दूरदर्शन करते हैं, जिसे हम संस्कृत के माननीय काव्यों में देखने के अभ्यस्त हैं। पदों का रस विन्यास अपने में जुलुप रूप में सर्वदर्शनीय है।

रविकीर्ति की ऐंद्रोल प्रशस्ति : पुलकेशी द्वितीय की प्रशंसा में लिखा गया यह शिलालेख संस्कृत काव्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस प्रशस्ति की भाषा आलंकारिक और भावपूर्ण है। रविकीर्ति का यह श्लोक विदग्धों के हृदय को भी चमकृत करने वाला है :

“शूरे विदुषि च विभजन्दानं मानं च युगपदेवम्
अविहितयथासंख्यो जयति च सत्याश्रयः सुविग्म्”

अर्थात् उस सत्याश्रम की चिन्ताकाल तक जय हो जो शूर में और विद्वान् में दान और मान को एक साथ ही यथासंख्या की गणना न करके प्रदान करता था। शूर को केवल दान और विद्वान् को केवल मान से ही समाहित न करके दोनों वस्तुओं से दोनों का सम्मान करता था।

कविवर रविकीर्ति भी अपने को कालिदास और भारवि की कोटि का काव्य मानते हैं। इनके कुछ श्लोकों पर तो कालिदास का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जैसे :

“कावेरीदूतशफरीविलोलनेत्रा
चोलानां सपदि जयोद्यतस्य स्य
प्रच्योतन्मदगजसेतुरुद्धनीरा
संस्पर्श परिदृष्टि स्म गन्तराशेः”

इस श्लोक में कालिदास के ‘रघुवंश’ का छाया पाठको के समान प्रत्यक्ष रूप से अवलोकनीय है।

उपमा और उत्प्रेक्षा के विचार से यह प्रशस्ति अति सुन्दर रची गई है।

स्कन्दगुप्त का गिरनार शिलालेख : यह प्रशस्ति ३६ पद्यों में निबद्ध संस्कृत भाषा के काव्य का उत्तम उदाहरण है। कोमल कल्पना को प्रश्रय देने वाली यह प्रशस्ति महत् रूपवान् है। रस की अभिव्यक्ति के साथ ही साथ श्लोक अलङ्कारों में भी अपना प्रचुर प्रभुत्व दिखाते हैं। विरोधी गुणों का वर्णन कवि न कितनी सामंजस्यपूर्ण भाषा में किया है :

“सौन्दर्यमाथैतरनिगृहश्च
आवस्मयो धैर्यमुदीर्यता च
इत्येवमेतेऽतिशयेन यस्मि-
न्निविप्रवासेन गुणा वसन्ति”

अधिक दृष्टि के कारण जब नदियाँ अपने किनारों

से ऊपर होकर बहने लगीं तब कवि को प्रतीत होता है कि पर्वत मानो अपने मित्र समुद्र की ओर अपना नदीमय हस्त फैला रहा है

“अवेक्ष्य वर्षागमनं महोद्भ्रमं
महोदधेरुज्जयता प्रियेषुना
अनेकतीरान्तजपुष्पशोभितो
नदीमयो हस्त इव प्रसारितः”

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत भाषा में वर्णित ये शिलालेख गद्य पद्य और चम्पू क आदर्श उदाहरण हैं। विक्रम की ये प्रारंभिक शताब्दियाँ किसी भी दृष्टि में संस्कृत भाषा के हाम को प्रकट नहीं करती अपितु संस्कृत काव्य के प्रणयन की पूर्णता को ही प्रदर्शित करती हैं। ये शिलालेख इस बात को प्रमाणित करते हैं कि संस्कृत भाषा उस समय भी राष्ट्रभाषा होने का गौरव रखती थी।

द्वारा : कु० निर्मला आर्य

४०, महिला छात्रावास,
काशी विश्वविद्यालय
वाराणसी

—कु० अमृता भारती

पहाड़ों का महत्त्व

लोग ऊँचे-से-ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर क्यों जाना चाहते हैं ? किस लिए वे वहाँ पर जाने के लिए अपने जीवन को खतरों में डालते हैं ? किस लिए वे हिमालय के उच्चतम शिखर तक पहुँचना चाहते हैं ?

इस प्रश्न के अनेक उत्तर दिए जा सकते हैं। मनुष्य को अनुमन्यमान और खोज की अभिलाषा वहाँ ले जाती है। वास्तविकता यह है कि मनुष्य देखना चाहता है कि ऊपर चोटियों पर क्या है; उस पार—दूसरी ओर क्या है ? मनुष्य वहाँ किसी ऐसी महान् वस्तु के दर्शन करना चाहता है जो कि उसे सामान्यतया उपलब्ध नहीं होती है।

मानव जाति में प्रारम्भ से ही यह विश्वास रहा है कि ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर देवता निवास करते हैं। बेबिलोनिया के लोगों का यह विश्वास था कि ऊँचे पहाड़ देवताओं के रहने के स्वाभाविक निवास-स्थान हैं। ग्रीक और रोमन लोगों के देवता भी ऊँचे ओलिम्पिक पहाड़ पर निवास करते थे। मूसा को १० आदेश सिनाई पर्वत पर प्राप्त हुए थे।

—हैरी गोल्डन

राजस्थान के साहित्य-मर्मज्ञ श्री अग्रचन्द नाहटा से एक भेंट

ऐसी कोई भी साहित्यिक पत्रिका न होगी, जिसमें अग्रचन्द नाहटा के लेख पाठकों को न मिलें। अब तक उन्होंने अपने २६ वर्ष के साहित्यिक जीवन में ११६१ विभिन्न विषयों पर, १४१ विभिन्न साहित्यिक-पत्र पत्रिकाओं के लिए लेख लिखे हैं। इन लेखों में ऐतिहासिक, पुरातत्व सम्बन्धी, प्राचीन हस्त-लिखित-ग्रन्थ सम्बन्धी तथा अन्य सामयिक साहित्यिक सूचनाएँ हैं। लेखों के अतिरिक्त १५ से अधिक प्रकाशित, पाँच-सात मुद्रणा-भिमुख तथा ४० से अधिक संपादित ग्रंथ हैं। जैन साहित्य के प्रति उनका विशिष्ट आकर्षण प्रारम्भ से ही रहा है।

उपरोक्त पीठिका के आधार पर ही, मैंने नाहटा जी को साहित्य-मर्मज्ञ कहा है। विषयों की विविधता एवं लेखनी की पचुरता पर मुझे प्रारंभ से ही आश्चर्य होता रहा है, अतएव मैंने उनसे पत्र-व्यवहार करने का विचार किया। मेरा पहला पत्र संभवतः १ अक्टूबर १९५६ को गया। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा जब ५ अक्टूबर को मुझे प्रत्युत्तर मिला। अपने इस प्रथम पत्र में, मैंने अपना परिचय देते हुए 'मत्यवती' एवं 'मृगावती' कृतियों के संपादन के विषय में दो-एक पंक्तियाँ लिखी थीं और अन्त में तद्विषयक सामग्री के लिए उनसे याचना की थी क्योंकि जितना अधिक ज्ञान नाहटा जी को प्राचीन साहित्यिक प्रतियों के विषय में है, वह आज समूचे हिन्दी संपार में बिरलों को ही प्राप्त है। नाहटा जी ने एक कार्ड पर जो अपना जवाब लिखा, उसमें मेरे द्वारा बांछित समस्त प्रश्नों के उत्तर थे। तब से समय-समय पर पत्र-व्यवहार होता रहा। कभी मैं उनके लिए ग्रंथों की सूचियाँ भेजता, कभी वे। किन्तु जहाँ तक मेरा अनुमान है, मेरे द्वारा प्रेषित "छिताई चरित", 'चन्दन-मलयागिरि' तथा 'लीलावती' नामक तीन प्रेम-ख्यानकों की मेरी प्रतियों को उन्होंने पसन्द किया। मैं तो उनके प्रत्येक शुद्ध, प्रत्येक लेख एवं प्रत्येक कार्य कलाप पर पहले से ही आकर्षित था।

कई बार टाइप किए पत्र आए। सम्भक्ते देर न लगी कि वैया क्यो हुआ। बात यह थी—कि एक बार

मैंने उन्हें लिखा, "आपका हस्त-लेख प्रायः मुझे नहीं पढ़ा जाता। किन्तु नहीं, उसके बाद कई बार हस्त-लिखित पत्र फिर आए। अब तो मैं उनको पढ़ लेने का अभ्यस्त हो गया हूँ।

न जाने ऐसे उद्भट लेखक के लिए मैंने क्या-क्या कल्पनाएँ की थीं। पहली कल्पना उनके आयु की थी। मैं उन्हें साहित्य के महारथियों में काफी वृद्ध समझता रहा। दूसरी धारणा उनके जैन मतावलम्बी होने की थी। अन्तिम और तीसरी धारणा उनकी योग्यता की थी—मैं उन्हें 'डाक्टर' समझता रहा। वासुदेवशरण अग्रवाल तथा भगवतशरण उपाध्याय के ही तुल्य मैं नाहटा जी को भी डाक्टर मानता रहा क्योंकि पुरातत्वीय लेख तीनों के एक ही कोटि के होते हैं। कभी-कभी तीनों को एक ही स्कूल के सहपाठी होने की कल्पना करता था। शेष दो स मिलकर उनके स्तर से परिचित हो चुका था किन्तु नाहटा जी अवश्य ही एक गुथी के रूप में थे। सोचता था राजस्थान जा पाऊँ तभी यह संभव है। वैसे स्वाक्षिप्य एवं इन्दौर में साहित्य के साथी हैं। उनसे मिलने की भी सोचता रहा हूँ। कलम के दोस्तों की संख्या अभी तक पूर्व परिचितों से अधिक है। ऐसी अवस्था में कुछ भ्रान्त धारणाएँ होनी सहज हैं। एकाध पत्र इस आशय के मिले कि नाहटा जी शायद प्रयाग आएँ क्योंकि यहाँ के संग्रहालय एवं सम्मेलन में कुछ ऐसी हस्तलिखित प्रतियों की सूचना मैं उन्हें दे चुका था कि वे बरबस खिंचते प्रतीत हो रहे थे। यही हुआ भी, किन्तु न जाने क्यों नाहटा जी ने इसकी पूर्व-सूचना मुझे न दी।

१ अप्रैल १९५७ को ४ बजे सायं विश्रवधिया-लय से लौट रहा था कि रास्ते में छोटे भाई ने बताया, "अग्रचन्द नाहटा २ बजे घर आए थे। इस समय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-संग्रहालय में होंगे।" आतुरता-वश मैं संग्रहालय पहुँचा। वहाँ पर हस्तलिखित ग्रन्थों के अधिकारी श्री वाचस्पति गैरोला से मिला। उन्होंने बताया कि इस समय नाहटा जी मुद्रणालय में कतिपय पुस्तकों का क्रय करने गए हैं, थोड़ी देर में आ जाएंगे।

में बैठा रहा। सामने ही कई सहस्र हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची पड़ी थी, और पड़े थे नाइट्वा जी द्वारा लिए गए नोट। उनकी हस्तलिपि से मैं भलीभाँति परिचित था ही। एक घण्टे में ही उन्होंने अपार श्रम करके ग्रन्थों की सूची में से अमूल्य ग्रन्थ रत्नों के नाम छूँट लिए थे। वाञ्छित ग्रन्थों की हस्तलिपियाँ भी मँगवा कर सामने रख ली थीं।

सम्मेलन के पाँचवाँ में होकर जैसे ही संप्रदालय की ओर वे प्रविष्ट हुए श्री गैरोला जी ने नाइट्वा जी की ओर संकेत करते हुए कहा “वे जा रहे हैं।” उनकी वेशभूषा एवं उनके गठन को देखते ही मेरी कल्पनाएँ कपूर की भाँति उभ गईं। सर पर केमरिया रंग की मारवाड़ी पगड़ी, शरीर पर ढीला सफ़ेद कुर्ता, धोती तथा पाँव में जूतियाँ देख मैं चकित रह गया। उनका ममोला कद, सोंवला रंग और यह प्राचीन वेशभूषा दोहरा गढ़ा बदन उनकी युवावस्था के अन्तिम चरण की ओर स्पष्ट संकेत-मा करता हुआ। आँखों में मोटा चश्मा।

कमरे में आते ही मैंने उन्हें प्रणाम किया और अपना परिचय दिया। साहित्य के विविध अंगों पर वार्ता होती रही। उन्होंने कहा—“आज मैं बहुत परेशान हुआ। तुम्हें ढूँढ़ने पहले विश्वविद्यालय गया, वहाँ पर कोई पता न चला क्योंकि प्रातः के कार्यालय थे। तब मैंने शहरारा बाग ढूँढ़ना प्रारंभ किया। वड़े ही यत्न से घर पा सका किन्तु वहाँ दो बार जाने पर भी भेंट न हो सकी तो मैं निराश हुआ।” सचमुच आकस्मिक मिलन ऐसे ही संभव हो पाते हैं अन्यथा कुछ मिनट और विलम्ब होने पर मैं नाइट्वा जी से भेंट भी न कर पाता। संप्रदालय का कार्य शीघ्र ही पूर्ण करके नाइट्वा जी प्रयाग म्यूजियम जाने के लिए व्रत हुए। एक रिकशा कम्बे में उन्हें वहाँ ले गया। रास्ते में विभिन्न विषयों पर बातें हुईं।

मैंने प्रश्न किया, “झिटाई वार्ता” के प्रकाशन का कार्य कहीं तक आगे बढ़ा है? उन्होंने बताया कि शीघ्र ही आगरा विश्वविद्यालय के नव-मन्त्र में यह कार्य संपादित हो जाएगा। उनकी ‘समय सुन्दर कृति कुछ-मांजखि’ नामक संपादित कृति की भी चर्चा मैंने उठाई। वे हर प्रश्न का उत्तर अत्यन्त सरलता एवं विद्वत्ता से देते रहे। फिर मैंने अवधी क्षेत्र के, विशेषतया अन्तर्वेद

के विशाल हस्तलिखित भण्डार की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया और उसकी व्यवस्था एवं सद्धार के विषय में उनका अभिमत चाहा। उन्होंने बताया कि राजस्थान के हस्तलिखित ग्रन्थों के प्रकाशन एवं उनकी व्यवस्था के लिए केन्द्रीय सरकार से कई सहस्र का अनुदान उनकी संरक्षता में अभी प्राप्त हुआ है। उसी प्रकार से यदि अन्तर्वेद के विद्वान् मिल कर ग्रन्थों की सूची बनाएँ और फिर उनके प्रकाशन के लिए आवश्यक निधि की माँग सरकार से करें तो संभव है सफलता मिल पाए। उन्होंने एक वर्ष पूर्व से प्रकाशित होने वाली ‘अवधी’ नामक पत्रिका की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करते हुए सलाह दी कि मैं उक्त पत्रिका में अपना सहयोग दूँ। उन्होंने उसमें अपने एक लेख के प्रकाशित होने की सूचना भी मुझे दी। फिर उन्होंने ‘मृगावती’ के विषय में मुझ से कुछ प्रश्न किए। अवसर समझ कर मैंने भी अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में सुरक्षित ‘मृगावती’ के विषय में कुछ पृष्ठताज की। उन्होंने बल देते हुए कहा, “वह प्रातः अधूरी है और कैथी लिपि में होने से श्रष्ट है। उसके कुछ पृष्ठों की नकल एक वर्ष पूर्व उदयशंकर शास्त्री लाए थे किन्तु मूल प्रति को पुस्तकालय के बाहर ले जाने की आज्ञा नहीं। चाहें तो वहीं आ कर उसकी प्रतिलिपि कर लें।”

म्यूजियम पहुँचते पहुँचते ५.११ बज चुके थे। ६।। बजे म्यूजियम बन्द होने का समय होता है। जैन ग्रन्थों की सूची यहाँ अलग से नहीं थी। अतः ५.५० हिन्दी ग्रन्थों की सूची को उन्हें उलटना पड़ा। आवश्यक एवं महत्वपूर्ण प्रतियों के वे छन नम्बर तथा क्रम संख्या आदि एक पृष्ठ पर वे लिखते गए। अतः मैं ‘झिटाई वार्ता’ की प्रति जो सं. १६८२ की है, उन्होंने मँगवा कर देखी। उसके पन्नों को गिना, अंतिम अंश लिखे, प्रति पृष्ठ पर पंक्तियों की संख्या तथा प्रति पंक्ति में शब्दों की संख्या भी गिन कर लिखी। तदनन्तर चित्रकला कक्ष में प्रविष्ट हो कुछ चित्र देखे। पुरातत्ववीर्य सामग्री में से भरहुत की प्रस्तर कला का देह तक निरीक्षण करते रहे।

अंधेरा हो चला था। पाम के जलपान गृह की ओर मैं उन्हें ले जाना चाहता था किन्तु उन्होंने कहा, “सूर्य अस्त होने पर वे आज जल भी प्रदण नहीं करेंगे, खाने की बात तो दूर। आज दिन में फलाहार किया है। व्रत है।” मैंने समझते हुए भी कुछ-कुछ समझा कि संभवतः जैन होने के नाते विशेष व्रत का अनुष्ठान हो

रहा होगा। किन्तु दूसरे ही क्षण जब से एक पत्र निकाल कर उन्होंने जैन-मंदिरों के स्थान पछे और उनमें से कुछ के स्वयं नाम गिनाए। आज तक प्रयाग में ६ वर्षों से रहते हुए मेरा ध्यान इस ओर न गया था कि यहाँ जैन मंदिर भी हैं। मैं अवाक था। थोड़ा-या रुक कर फिर कहा, “डा० माताप्रसाद गुप्त के यहाँ भी हो लिया जाए तो अच्छा हो किन्तु उनका पता मुझे ठीक से याद नहीं।” अभी तक मैंने डा० गुप्त के ग्रंथ ध्यानपूर्वक पढ़े थे, उनके पाण्डित्य से प्रभावित था किन्तु न तो उनके दर्शन किए थे और न घर का पता ही जानता था। नाहटा जी चाहते थे कि ऐसी अवस्था में मैं अवश्य उनसे उनके माध्यम से मिलूँ किन्तु कई स्थानों में पता पूछने पर भी हम उनका ठीक-ठीक पता न पा सका। निराशा होकर एक रिश्ता करके चौक-स्थित ‘साहित्य-भवन’ पहुँचे। वहाँ से जैन मान्दरों के विषय में जानकारी प्राप्त की। ७ बजे हम उस मुहल्ले में प्रविष्ट हुए, जहाँ ८-६ जैन मन्दिर हैं। इस मुहल्ले में वैसे मैं कई बार घूम चुका था किन्तु कभी विश्वास न हुआ था कि वहाँ जैन मन्दिर होंगे। अतः जब नाहटा जी के साथ बड़े-बड़े प्रसादों में प्रविष्ट हुआ तो मुझे ऐसा ज्ञात हुआ जैसे किसी के व्यक्तिगत महलों में घुस रहा हूँ। नाहटा जी ने वहाँ कई व्यक्तियों से श्वेताम्बर एवं दिगम्बर मन्दिरों के परिचय प्राप्त किए। फिर उनमें से तीन के भीतर गए भी।

वे ड्योढ़ी पर ही जूत उतार कर भीतर प्रविष्ट होते। कुछ दूर आगे चल कर सभी मन्दिरों में सामने ही ऊँचे सिंहासन पर भगवान् महावीर की काली प्रस्तर मूर्ति अथवा धवल मूर्ति दिखती। करबद्ध हो नाहटा जी उसके समक्ष नतमस्तक होते, मन में कुछ संस्कृत श्लोक कहते जिनकी अप्रष्ट ध्वनि मुझे भी सुन पड़ती। फिर परिक्रमा करते वहाँ की सेविकाओं से कुछ प्रश्न भी करते। सन्ध्या का वह समय जैन मन्दिरों में आरती का समय था। एक मन्दिर में कई इटाएँ, “आरति कीज जिन महाराज की” गाती हुई भगवान् महावीर की आरती में मग्न थी। किसी-किसी मन्दिर में बिना पछे, रोक-टोक के बिना, नाहटा जी सिद्ध पथ-प्रदर्शक की भौंति मन्दिर के अन्तर एवं बाह्य का परिभ्रमण कर लेते। सभी मन्दिरों में मैं उनके साथ था। कहीं-कहीं वर्धमान की नग्न प्रस्तर-प्रतिमाएँ थीं, जिन्हें नाहटा जी ध्यानपूर्वक देखते। सभी मन्दिरों में हस्तलिखित ग्रन्थों

के आगार दिखाई पड़ते। मैं श्रद्धानत अवश्य हो जाता किन्तु अन्ततम में मुझे क्या करना चाहिए, मैं न जानता था अतः अवाक हो नाहटा जी की प्रक्रियाओं का ही अध्ययन एवं दर्शन करता रहा। अन्त में मेरी धारणा बढ़ गई कि नाहटा जी का जैन-साहित्य के प्रति अनुराग का कारण उनकी धर्म-प्रवृत्ति है। अपने अत्यन्त व्यस्त कार्य-क्रम में से आध घण्टे का अमूल्य समय निकाल कर देवी-देवालयों के देखने में लगाना सहज संभव नहीं और न हर एक प्राणी के बूते की बात है। धर्मपरायण व्यक्ति ही ऐसा कर पाते हैं। नाहटा जी की धार्मिकता पर मुझे बिल्कुल सन्देह न रह गया।

तब नाहटा जी ने अपना अन्तिम कार्य-क्रम का मर्म खोला। उन्होंने बताया कि वे आज ही रात्रि में कलकत्ता जाना चाहते हैं। जाने वाली गाड़ी का समय ८ बजे है, अतः जल्दी से सत्यनारायण कुटीर चला जाए। सत्यनारायण कुटीर, साहित्य-सम्मेलन में अतिथियों के रुकने का विश्राम-गृह है। वहीं नाहटा जी का सामान था। हम वहीं के लिए पैदल चल पड़े। रास्ते में नाहटा जी ने प्रयाग के दर्शनीय स्थलों के विषय में पूछताछ की। ‘त्रिवेणी’ न देख पाने और स्नान कर सकने का उन्हें संताप हुआ किन्तु प्रयाग का कार्य समाप्त हो चुका था। उन्हें कलकत्ता जाना आवश्यक था।

मेरे कई पत्रों में नाहटा जी ने लिखा था “मैं बम्बई, मद्रास तथा दिल्ली के भ्रमण के परचात् कई महीनों में बीकानेर लौटा हूँ।” मैं सोच रहा था उनकी कलकत्ता-यात्रा भी साहित्यिक-दृष्टिकोण से हो रही होगी किन्तु जब मैंने कलकत्ता जाने का कारण उनसे पूछा तो उन्होंने बताया, “कलकत्ते से मैं आसाम (गोहाटी) जाऊँगा। वहाँ हमारा व्यापार होता है।” मैं आश्चर्यचकित रह गया। फिर पूछा, “तो आसाम से कब लौटिएगा?” उत्तर था—“तीन-चार महीने बाद। किन्तु सभी प्रकार के पत्र बीकानेर से मेरे पास वहाँ पहुँचते रहेंगे। हमारा सभी चीजों का व्यापार है। उसका कार्य करता हूँ, साथ ही समय मिलने पर साहित्य की सेवा।”

तब तक हम कुटीर में पहुँच चुके थे। बिस्तर बन्द नीचे ले आया गया। उसमें एक गद्दा और तकिया के अतिरिक्त अनेक पुस्तकें थीं। स्पष्ट था कि रास्ते भर वे उनका अवलोकन करेंगे। गाड़ी का समय निकट था।

रिक्शो से स्टेशन और वहाँ से कलकत्ते के लिए विदा। चार घण्टों के अल्प काल में और क्या-क्या प्रदृश्य कर सकता था ?

रात्रि का, उनके चले जाने के पश्चात् सोचता रहा, वाह रे साहित्य का अनुगम ! व्यापार के साथ उसकी संगति अनूठी है ! 'प्रसाद' जी का तम्बाकू का व्यापार मुझे उतना चाकत न कर सका था जितना बीकानेर से आमाम तक कपड़े तथा अन्य वस्तुओं का व्यापार। नाहटा जी अपने को व्यापारी कह गए यही मैं सोचता रह गया कि साहित्य को इतना योगदान देने पर भी वे इतने सरल क्यों हैं ? उन्होंने अपने को साहित्यकार क्यों नहीं कहा ? यही उनकी विराट्ता है—इसके सवाय और क्या हा सकता था। आज क भौतिकवादी युग में 'अई' का उनमें लेशमात्र भी पुट नहीं। मेरी और उनकी स्थितियों एवं अवस्थाओं में जो अन्तर था, उसमें इस प्रकार के साहचर्य की कामना तो अवश्य करता था किन्तु व्यवहारिक रूप में मुझे उमका अनुभव हो सकेगा, इसकी मे कल्पना भी नहीं कर पाता था। साहित्य के विविध अंगों के प्रति उनकी जागरूकता प्रशंसनीय है। वे नवीन स नवीनतर, यही नहीं नवीनतम मामग्री प्रस्तुत करते रहने के पक्षपाती हैं। उनके लेखों में किसी प्रकार का न तो आप्रग्रह रहता है और न अपनी स्थापनाओं की पुष्टि का प्रयत्न।

साहित्य के क्षेत्र में उनकी दानशीलता सर्वोपरि है। समवतया डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसीलिए

लिखा है—“नाहटा जी जैमे परिश्रमी और बहुभुत विद्वान हैं वैसे ही उदार और निःस्पृह भी। उन्होंने अपने महत्वपूर्ण लेखों को दोनो हाथ लुटाया है। छोटी-छोटी अपरिचित पत्रिकाएँ भी उनकी कृपा से वंचित नहीं रहती हैं।”

कविवर 'ममय सुन्दर कृति—कुसुमांजलि' की भूमिका में नाहटा जी ने लिखा है “कविवर के सम्बन्ध से ही हमें बड़े-बड़े विद्वानों में पत्र-व्यवहार करने, मिलने भग्डारों को देखने का सुयोग मिला; अन्यथा पॉचवीं कक्षा तक के विद्यार्थी और व्यापारी घराने में जन्मे हुए साधारण व्यक्ति के लिए वैसे संपर्कों की कल्पना भी नहीं की जा सकती।.... वैसे तो कविवर की रचनाओं का रसास्वाद हमें अपने बाल्यकाल में ही, मिल गया था क्योंकि राजस्थान में, विशेषतः बीकानेर में रचित शत्रुघ्नय राम, ज्ञान पंचमी, एकादशी स्तवन... जैन जनता के हृदय का द्वार बन रही हैं। हमारे पिता जी प्रातः काल उनका नित्य पाठ करते थे और माता जी से भी उन रचनाओं को हम ने बाल्यकाल में सुना है।”

संस्कार बाल्यकाल में ही बनते हैं। नाहटा जी का बचपन से ही जैन ग्रन्थों के प्रति आकर्षण था। नसी का वृहद् रूप आज हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों की सेवा के रूप में सब के समक्ष है। ऐमे साहित्य मेवी मर्मज्ञ एवं उदार पुरुष से हमें अभी बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। उनकी छाप मेरे हृदय पर अमिट रहेगी।

२५, अशोक नगर,

इलाहाबाद—१

—शिवगोपाल मिश्र

प्रशंसा : गाली

तेलुगु में 'गाली' शब्द के लिए "बुन्" शब्द का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में "बुन्" शब्द का अर्थ है "प्रशंसा"। तेलुगु में अब इस शब्द का विपरित अर्थ में प्रयोग होता है। "बुन्" शब्द का अर्थ अब गाली होता है।

नए युग की कविता

प्रति क्षण बदलते हुए युग में कविता की स्थिति समुद्र में पड़े हुए दिशाहीन जहाज सी हो गई है। यों तो कविता की लीक कभी निर्धारित नहीं हुई, और न सफल काव्य रचना के लिए किसी कवि का मार्ग पूर्व से निश्चित रहा है। हमेशा ही कवि अपनी रचना के लिए स्वतन्त्र रहा है। किसी प्रकार की कोई ऊपरी मत्ता उस काव्य रचने की दिशा नहीं बता सकी, और यदि ऐसा हुआ तो निस्सन्देह ऐसी स्थिति में रचा गया काव्य अधिक शक्तिशाली नहीं हो सकता, यही कारण है कि कविता का स्थान मनुष्य के मस्तिष्क की सर्वोत्तम कृतियों में है।

हमेशा ही सफल कविता पुरानी लीकों को छोड़कर आई, जहाँ एक प्रकार की कविता समाप्त हुई वहीं दूसरी प्रकार की कविता का जन्म हुआ। कभी वह स्थिति पुरानी मान्यताओं की विरोधी प्रक्रिया के रूप में उत्पन्न हुई, और कभी अचानक बदल गए सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के कारण हुई। कविता के वे आलोचक जो नई प्रवृत्तियों को शीघ्र न स्वीकार कर सके वे भी कम से कम 'लीक' छोड़ तीनों चले, मायर, सिंह, मयूत' वाली कदावत को सोचने का लए विवश हुए। यह ठीक है कि नए मूल्यों की स्थापना जितने सहज रूप में हो जाती है, और संपर्कशील मानव समाज उसे समय के अनुसार स्वीकार करने में विरलुल दिव-किचाता नहीं, किंतु जरूरी नहीं वे ही स्वीकृतियाँ कार्य कारण के साथ एक प्रशस्तिचिह्न बन कर खड़ी हो जाती हैं तब वह उन्हें सोचने और समझने के लिए जूझता है।

आज की कविता के आलोचक, जो व्यक्ति रूप में बदले हुए जीवन-मूल्यों को स्वीकार कर चुके हैं—जब आधुनिक कविता की आलोचना करते हैं, तब दुःख होता है कि वे उन कविताओं की समालोचना के लिए वर्तमान जीवन-कसौटी को छोड़ कर, पुरानी कसौटियों को प्रदण करते हैं। वे भूल जाते हैं कि भिन्नता ऊपर से टपकी हुई कोई चीज नहीं है, हमारे जीवन-मूल्यों के साथ तादात्म्य करती हुई नूतन मान्यता है।

कविता हमेशा अरुण रुख बदलती रही पर

क्या कारण है इस युग की कविता पिछले समस्त युगों से भिन्न है? अक्षर कवियों से पूछा जाता रहा है कि वह आज जिस प्रकार की रचनाएँ कर रहा है, हैं, उसका अन्त क्या है, उसका क्या लक्ष्य है? ये प्रश्न स्वाभाविक और सीधे हैं, पर इन शब्दों में विवशता है, लाचारी है। विवश और लाचार पाठक के ये प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इसके कारण हैं।

आज के युग की कविता जैसा कि आलोचक कहते हैं, बहुधा उलझी रहती है। यदि उलझी न हो तो, उसके अर्थ या भाव को प्रहण करने में आवश्यकता में अधिक मस्तिष्क लगाना पड़ता है। क्योंकि न तो उसकी विषय-वस्तु का पता चलता है, और न ही उस तथ्य का जो उसकी आत्मा है। और यदि वह समझ में आ भी गई तो उनका प्रभाव नहीं के बराबर ही होता है। कुछ अंशों में ये बातें सच हैं। बहुत सी कविताएँ ऐसी हैं जो इन कमजोरियों से भरी हुई हैं। उनके बारे में एक महज और सरल ही उत्तर दिया जा सकता है कि हर कविता श्रेष्ठ कविता नहीं होती, और ये कमजोरियाँ भी महत्व की हैं, इन्हीं पर अपने को कमकर आगे का काव्य महत्वपूर्ण होता है।

किन्तु वे आलोचक जो नए युग के नए काव्य के अस्तित्व का शर्णांश भी स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं, और मानते हैं कि 'कविता का युग समाप्त हो गया है'; 'अब कविता के नाम पर गद्य लिखा जा रहा है' या 'आज की कविता, कविता नहीं है बल्कि डायरी में लिखे गए दिन भर के अनुभवों के फुटकल नोट्स हैं' वे इस बात को भूल जाते हैं कि इस युग की कविता, इसी युग की है, यानी उस युग की जिसमें कि वे जी रहे हैं; जिसमें कि वे रह रहे हैं। यदि वे आलोचक ध्यान में देखें तो उन्हें अपने जीवन के आसपास की समस्याओं, और परिस्थितियों से ही इस प्रश्न का उत्तर मिल जा सकता है। यदि उनके इस कथन को हम सही मान लें कि 'कविता का युग समाप्त हो गया है' तो हम उसी तरह यह भी कह सकते हैं 'हमारे जीवन की सारी कोमलताओं, भावनाओं, का श्रेष्ठ रूप भी समाप्त हो गया है।' यदि उनके

इस कथन को भी सच मान लिया जाए कि 'अब कविता के नाम पर गद्य लिखा जा रहा है' तो हम उसी तरह यह भी कह सकते हैं कि 'अब जीवन के नाम पर विवशता जी रही है।' निश्चित ही ये वक्तव्य घोर निराशावादी हैं, पर इनकी गहराई का यथेष्ट प्रमाण भी है। हमारे जीवने के उलझाव हमारे साक्षी हैं। अतः कविता में भी उलझाव है—तो आश्चर्य क्यों ?

किन्तु इन उलझनों का सही रूप आँकने के लिए हमें इतिहास की ओर दृष्टि डालनी होगी। पिछले दो महायुद्धों की विभीषिका, और तीसरे महायुद्ध की प्रतिच्छन्न दबोचती हुई आशंका हमारे सामने है। साथ ही साथ विज्ञान के विकास का प्रभाव भी हम देखते हैं। यह युग विज्ञान का युग है। हमारे जीवन को आज सबसे अधिक विज्ञान प्रभावित करता है। इस प्रभाव का कारण यह हुआ कि हमारे जीवन के कोमलतम भागों को भी, इसका शिकार होना पड़ा। विज्ञान की नित्य नई खोजों ने पुरानी मर्यादाओं के सारे दुर्ग दहवा दिए। मशीन केवल हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती रही बल्कि हमें मशीन बना देने पर भी तुल्य गई। और हम मशीन का मशीन के पुँजे हो गए। किन्तु यह परिवर्तन धीरे-धीरे हुआ। बदलते हुए जीवन-मूल्यों का नतीजा यह हुआ कि हमें युग-जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा करनी पड़ी। चेष्टा करनी ही पड़ी—क्योंकि वह समय की माँग थी; पर हमारे संस्कार, कुछ बची-खुची प्रवृत्तियाँ, कुछ अन्तःप्रेरणायें, ऐसी चेष्टाओं से जूझती रहीं। और अन्ततः हमारी हर चेष्टा संघर्ष बन गई। हर व्यक्ति अपने अस्तित्व की खोज, अस्तित्व को बचाने के लिए ही प्रयत्न करने लग गया। मनुष्य की हर चेष्टा का विषय यह हुआ कि कम-से-कम समय, द्रव्य, या श्रम के द्वारा किस प्रकार अधिक से अधिक उपलब्धियों की संभावना हो सकती है। इस चेष्टा ने हर व्यक्ति के जीवन की दौड़ की रफ़्तार तेज कर दिया। उस दौड़ में एक गात रह गई, पर गति का कारण और गन्तव्य उलझ गए; अस्पष्ट हो गए। परिणाम यह हुआ कि जो शक्तिशाली रहा किसी भी रूप में, वह इस रफ़्तार के साथ जीवित रह सका, किन्तु जो कमजोर रहा, वह पिछड़ गया और धीरे-धीरे टूट गया। जब यह रफ़्तार कुछ ठिकाने पर आने को हुई तो लगा कि अभी भी मंजिल दूर है, क्योंकि वह रफ़्तार तो रफ़्तार ही थी, उसकी न दिशा

थी और न गंतव्य था। कुछ अंशों में वह रफ़्तार ही गलत थी; कुछ अंशों में उन तत्वों का जन्म ही, जिनकी प्रक्रिया यह रफ़्तार थी गलत हुआ। गलत रास्तों की रफ़्तार का कारण यह हुआ कि युग पीछे रह गया। हर व्यक्ति का जीवन त्रिशकुल हो गया। अब उसे अपने पाम उसली-कुछ सुलझी, कुछ अर्ध-सुलझी गतिधियों ही दीखने लगीं—इस प्रकार समूचे युग की आत्मा ही उलझ गई। पूरा युग एक संक्रान्ति युग बन गया। छोटे युद्ध हुए, गृह युद्ध हुए, अकाल पड़े, अस्तित्व की रक्षा के लिए अनेकानेक संघर्ष हुए। पुराने मूल्य आँधी में तिनकों के समान उबते हुए से दिखे, नए मूल्यों की स्थापना का कार्य कभी सहज और कभी कठिन बन गया। सहज बना तो मन-मानी हुई, कठिन हुआ तो गतिरोध आ गया। अर्थात् एक अजीब-सी ऊबड़-खाबड़ स्थिति आ गई। जन जीवन की उलझन का इतिहास यहीं से शुरू होता है।

ऐसी दशा में कविता इन सब प्रभावों से कैसे बची रह सकती थी। कवि भी तो सामाजिक प्राणी होता है। उसे भी दुनिया के साथ ही चलना पड़ता है। इस युग से वह अविच्छिन्न होकर तो नहीं जो सकता था ? उसे भी दुःखों, सुखों का सामना करना पड़ा। हर व्यक्ति जब समूह की परवाह न करके वैयक्तिक लिप्ता या राहों का शिकार हो गया, तो कवि उसका अपवाद कैसे हो सकता था। उसकी काव्यता का स्वर भी व्यक्तिवादी हुआ। समूह के प्रति वह कभी-कभी उदासीन भी हुआ, क्योंकि समूहों से उसे निराशा हुई। उलझे हुए जीवन के होते हुए उसकी कविता उन प्रभावों को तगढ़ देती हुई एक समतल धारा पर कैसे बढ़ सकती थी। बाढ़ तो कविता में भी आई, अतः उसक जीवन के साथ-साथ उसकी कविता भी उलझ गई। पर काव ने इस स्थिति को स्वीकार किया यह नहीं कहा जा सकता। आलोचक जिन कविताओं की स्वीकार्य-भावना की कविता कहते रहे हैं वे उन स्वीकारोक्तियों में छिपे हुए गहरे, पेने व्यंग्य को समझने में चूक गए हैं। वे यह भूल गए हैं कि पतनशील कह देना, मात्र सतही तर्क है, उसकी गहराई उसका मर्म, पतन से कहीं ऊपर, तलवर्ती होकर भी हिमालय-सी ऊँचाई रखता है। तीखी प्रातिक्रियाओं की कृतियों स्वीकारोक्तियाँ होती हैं, कम से कम यह मानने का कोई उचित कारण नहीं है, हाँ उन स्वीकारोक्तियों में छिपी हुई विवशता उस

चिकोटी के समान होती है, जो अपने प्रभाव से शरीर को तमतमाया, सिहरा, और पैना बना देती है।

जिन्हें लुई मैकनीस की कविता की ये पंक्तियाँ हासोमुखा लगती हैं :

“जीवन की ये सुखद वस्तुएँ
अन्त में
जहर और पीप बन जाती हैं”

वे भूल जाते हैं कि इस हास में भी कवि ने कितने तीखे ढंग से हमें चाकत करके, कुछ सोचने के लिए विवश कर दिया है। या इन पंक्तियों :

“तुम्हारी सभ्यता
मात्र
नासूर... पायरिया... इश्तहार बाजी है”

ने कितना बड़ा व्यंग्य हमारे समाज और संस्कृति पर किया है।

यही तक नहीं, युग के मूल्यों की तीखी पृथक्तियों तो यहाँ तक हुई कि कवि ने जीवन को मात्र मृत्यु की कामना ही मान लिया। सिसिल डे लुइस ने तो यहाँ तक कहा :

“हम अभिशापों में बँधे हैं
अपने भविष्य में रहने के लिए
जो नानिचय ही अपने मृत्यु के लिए रहना है !”

कुछ ऐसी ही तीखी प्रतिक्रिया टी. एस. ईलियट की कविता *Hollow Men* में हुई है। ईलियट ने आज की सभ्यता के खोखलेपन को महसूस किया है। उनकी दृष्टि में :

“हम सब खोखले हैं
और थके हारे हैं
साथ साथ झँकते हुए
हमारी सूखी आवाजें
मूक और अर्थहीन हैं,
जैसे इम सूखे मौसम की हवा !
हमारी आकांतियाँ
आकारहीन हैं
हमारी छायाएँ
रंग हीन हैं
लकवे से आहत हमारी हर शक्ति है

हम रिकू हैं, हम खोखले हैं
क्योंकि हमारे विचार और आचरण भिन्न हैं
क्योंकि हमारी इच्छाओं और शक्तियों के बीच
काली छायाएँ हैं—”

एक और उदाहरण प्रसिद्ध रूसी साहित्यकार इल्या एहरन वर्ग कविता की इन पंक्तियों से लीजिए—

“ईश्वर
इस दुर्दिन में किसकी हिम्मत है
जो आज अपने लिए तुम्हें पूजे !
तुम हमें दंड दो
पर हमारे बच्चों की रक्षा करो
इन बच्चों की, जो डर के मारे कौप रहे हैं
जो एक दूसरे से बेतरह चिपटे हुए हैं
जो दिन में भी इतनी तेजी से चीख रहे हैं
जो सबको पर भीषण उत्पातों की,
खबरें चिल्ला रहे हैं
हे ईश्वर
इन बच्चों की रक्षा करो
इनके बिना हमारा जीवन व्यर्थ है
ये हमारी भावी आशाएँ हैं”

तथा सी. बी. कवकी की कविता की ‘बर्बरो की प्रतीक्षा’ की इन पंक्तियों को लीजिए :

“चौराहे पर खड़े
लोग किसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ?
...आज बर्बर लोग नगर में प्रवेश करेंगे !
सम्राट् उनका स्वागत करेगा
.....
.....
पर यह क्या ?
यह हलचल कैसी ?
लोग उदास क्यों हो गए ?
मर्कटों और गलियों खाली क्यों होने लगीं ?
क्या बर्बर लोग नहीं आए.. वे लौट गए ?
हाय !
हम, हम क्या करेंगे !
वे आते, कम-से-कम,
एक समाधान तो प्रस्तुत करते !
(चाहे वह जैसा होता)

इन काव्याशों को किन्हें मैंने यहाँ रहत किया
उनसे नए युग के साथ सामंजस्य करती हुई आधुनिक
कविता की एक हलकी भोंकी मिलती है। ये कविताएँ
कुछ आलोचकों के मतानुसार हासोन्मुखी या पतनशील
हो सकती हैं, पर इनकी गहन तहों में छिपे हुए उस
मर्म के कथ्य को उन्हें भी स्वीकार करना होगा। कुछ
लोग इन कविताओं को असवेदनशील बताएँगे पर मैं
कहूँगा कि आज का कवि जितना संवेदनशील है उसे
देखते हुए कहा जा सकता है कि आज का काव्य जीवन की
गहराई में अधिक जा सका है, भले ही वह जीवन सतही
हो।... और कौन जाने विज्ञान किसी दिन सतह की
गहराई को भी खोज निकाले ! इन कविताओं में
तीक्ष्णपन को, जितने आज और जितनी तीव्रता के साथ
कवि महसूस कर सका है, वह महत्वपूर्ण है। इसमें भी
प्राण है, समूचे युग का दर्द है, कुण्ठाओं का प्रति सघर्ष
है, अन्याय का प्रति विरोध है, और सब से बड़ी बात
युग के साथ सामंजस्य है। और अपने प्रति ईमानदारी
है। अतः ये कविताएँ निष्प्राण नहीं हैं, बल्कि ये कवि-
ताएँ, काव्य की सर्वोत्तम स्थितियों की खोज हैं, या नहीं
तो अनागत युग-काव्य की भूमिकाएँ हैं।

और युग की ये स्थितियाँ अन्तिम भी नहीं हैं।
पर इन्हें अन्तिम रूप से अस्वीकार तभी किया जा
सकता है, जब भविष्य के लिए एक सचेत दृष्टि हो।
और वह दृष्टि ही आज के कवि में है। वह भविष्य का
प्रति आशान्वित है। एक नए जापानी कवि शिगेहारु

ना कानो की कविता से इसका अनुमान लगाया जा
सकता है :

“हमें काम करना चाहिए

और काम लायक बातें करनी चाहिए

किन्तु जब हम बातें करते हैं—तो पुस्तिम आती है

हमारे सारे कार्यक्रम को भंग कर देती है

तोड़-तोड़ कर हमारे अंग-अंग धर देती है

हमारी आँखों और नाकों पर प्रहार करती है

यही कारण है कि हम यहाँ छिपे हुए हैं

पर हम यहाँ से भी चले जाएँगे...

क्योंकि जल्दी ही सुबह होगी

जो काम करने के लिए होगी,

और हम काम करने के लिए बढ़ जाएँगे

क्योंकि हमें डूँढ़ी नई सुबहों में

नए जग-जीवन के फूल उगाने हैं

निर्माण करना है

अब सुबह हो रही है—

अच्छा !

तंग चार पाइयों वाले कल्ल, बिदा !

मेरे विचारों को कस कर जकड़े हुए,

ओ विजली के तार, बिदा !!

धुएँ में जकड़ी तंग रोशनियों,

रक्त चूपते कीड़ों,

विदा !

अलविदा !!”

श्रीवास्तव बिल्डिंग, खोतीबाड़ी

गिरगांव, बम्बई

—सत्येन्द्र श्रीवास्तव

नो-के

एक दिन रूस के भूत पूर्व विदेश-मंत्री ने एकाएक एक नया शब्द घड़ दिया। वे
एक ब्रिटिश और अमरीकी प्रतिनिधियों की सभा में सम्मिलित हुए थे। ब्रिटिश और
अमरीकी प्रतिनिधि अपनी स्वीकृति प्रदर्शन करने के लिए “ओ के” कह रहे थे। मो लो
तोव ने अपनी स्वीकृति प्रदर्शित करने के लिए अपना सिर हिलाते हुए कहा :
“नो-के”।

—लिओनार्ड लिओन्स

बन्दर का पंजा

बाहर, रात ठण्डी और भीगी थी, पर लेक्सनेम बिला के भीतर कमरे में खिड़कियों की झिलमिली गिरा दी गई थी और आग खूब रोशनी करती हुई जल रही थी। पिता और पुत्र शतरंज पर बसे थे। पिता, जिन्हें अनेक बड़े परिवर्तनों से गुजरे शतरंज के खेल की जानकारी थी, अपने बादशाह को ऐसे बड़े और अनावश्यक खतरों में डाल देते थे कि आग के समीप शांति से से बैठी मोजा बुनती सफेद बालों वाली बूढ़ी को भी चल रहे खेल के बारे टीका-टिप्पणी करनी पड़ जाती थी।

“हवा की आवाज सुनो,” श्री व्हाइट ने कहा। उन्होंने बहुत विलम्ब के बाद खेल में हुई अपनी गलती पकड़ ली थी और अब, इस प्रकार उस श्रेणी में अपने लड़के का ध्यान हटाना चाहते थे।

“मैं सुन रहा हूँ,” लड़के ने कहा और अपना हाथ फैलाते हुए भी बोर्ड पर से अपनी आँखों न हटाई। “बचिए।”

“मे नहीं समझता आज रात वह आया,” बोर्ड की ओर हाथ किए हुए पिता ने कहा।

‘मेट’ लड़क ने जवाब दिया।

‘कैसे बुरी तरह रहना है यह, एका-एक ऐसी हिंसा की भावना में, जिस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया, श्री व्हाइट चला कर बोले—“जानवरों के रहने की जगह, कीचड़दार जहाँ कोई न पहुँच सके, रास्ते में कीचड़, गड़क पर नाले के गंदे पानी की धारा। नहीं मलम, दूसरे लोग इसके बारे में क्या सोचते हैं। शायद वे सोचते हों सबक पर किराए के दो ही मकान हैं इसलिए इसमें कोई हर्ज नहीं।’

‘परवा न कीजिए,’ उनकी पत्नी ने साम्बना देते हुए कहा, “शायद जगली गार आप जीते।

श्री व्हाइट ने तेजी से देखा, माँ और बेटे के बीच चलने वाले कनखियों के इशारों को समझने की गारज से। उनके होठों पर शब्द खत्म हो गए थे और पतली, सफेद होती दाढ़ी के भीतर अपराध की स्वीकृति-स्वरूप थोड़ी-थोड़ी हँसी थी।

‘देखो, वह आ गए,’ हरवर्ट व्हाइट ने दरवाजे पर जोरों की दस्तक होते और किसी को भारी पदचापों से आते सुन कर कहा।

बूढ़े श्री व्हाइट जल्दी से उठे और उन्होंने दरवाजा खोला। फिर उन्हें नवागंतुक के प्रति खेद करते हुए सुना गया। आए हुए व्यक्ति ने भी शोक प्रकट किया और यह सब सुन कर श्रीमती व्हाइट ने ऊब के स्वर में कहा—“टूट-टूट!” जब उनके पाँत ने कमरे में प्रवेश किया तो वे थोड़ा खौसीं। उनके पीछे एक लंबा, इष्ट-पुष्ट व्यक्ति था जिसकी आँखें माला के दानों जैसी और चेहरा गुलाबी रंग का था।

‘मार्जन्ट मेजर मारिस,’ पति ने नवागंतुक का परिचय देते हुए कहा।

मार्जन्ट मेजर ने सबसे हाथ मिलाया और उन्हें आग के बगल में बैठने के लिए जो सीट दी गई वहाँ बैठने के बाद संनोष से चारों ओर देखा। मेजवान ने शराब और बड़े-बड़े गिलास निकाले और आग पर एक छोटी ताँबे की केतली चढ़ाई।

शराब का तीसरा गिलास ढाल लेने के बाद मार्जन्ट मेजर मारिस की आँखों में चमक आ गई और उन्होंने बातें शुरू कीं। संवार के विभिन्न भागों से आए इस व्यक्ति ने जब कुर्मी में अपने कन्धे सिकोड़ कर विचित्र दृश्यों, बहादुरी के कामों, युद्धों, मीथण विपत्तियों और अजीबो-गरीब लोगों के बारे में बातें शुरू कीं तो उस छोटे से परिवार ने उसे बड़ी दिलचस्पी से सुना।

‘इक्कीम साल हो गए,’ श्री व्हाइट ने पत्नी और पुत्र की ओर मुखातिब हो कर कहा, “जब ये भ्रमण पर निकले थे तो बिल्कुल जवान थे। और अब इनको देखो।”

‘इन्हें देख कर ऐसा तो नहीं लगता कि इन्होंने बहुत दुःख या विपत्तियाँ सही हों।’ श्रीमती व्हाइट ने विनम्रता से कहा।

‘मैं खुद हिन्दुस्तान जाना चाहता हूँ,’ बूढ़े (श्री व्हाइट) ने कहा, ‘जरा खुद देखूँगा कि वहाँ सब कुछ कैसा है?’

“आप जहाँ हैं वहीं अच्छे हैं,” सार्जेंट मेजर ने सिर हिलाते हुए कहा। उन्होंने खाली गिलास रख दिया और धीरे से दीर्घ श्वास लेते हुए उसे एक बार फिर हिलाया।

“मैं उन पुराने मंदिरों और फ़कीरों और बाजीगरों को देखना चाहता हूँ। बूढ़े ने कहा, ‘अच्छा मारिम, तुमने उस दिन बन्दर का पंजा या ऐसी किसी चीज़ के बारे में क्या कहना शुरू किया था?’

‘कुछ खास नहीं,’ सैनिक ने जल्दी-जल्दी कहा, ‘कोई ऐसी बात नहीं जो सुनने लायक हो।’

‘बंदर का पंजा?’ श्रीमती व्हाइट जिज्ञासा के भाव से बोलीं।

‘हाँ, वह एक ऐसी चीज़ है। जैसे शायद आप जादू कहिएगा,’ सार्जेंट मेजर ने लापरवाही से कहा।

उनके तीनों श्रोता उत्सुकता से आगे की ओर झुक गए। मेहमान ने यों ही खाली गिलास होठों से लगा लिया और फिर उसे रख दिया। मेजवान ने उसमें और शराब डेढ़ेली।

‘उसे आप लोग देखिएगा?’ सार्जेंट मेजर ने अपनी जेब टटोलते हुए कहा, ‘वह एक मामूली पंजा है, बिलकुल सूखा हुआ।’

उन्होंने अपनी जेब से कोई चीज़ निकाली और उसे लोगों के सामने पेश किया। श्रीमती व्हाइट उसे देख, मुँह बिचका कर पीछे हट गई। पर पुत्र उसे लेकर आश्चर्य से उसकी परीक्षा करने लगा।

अच्छा, इसके साथ खास बात क्या है? ‘श्री व्हाइट ने उसे पुत्र के हाथ से लेकर पूछा और उसकी जाँच करने के बाद उसे मेज पर रख दिया।

‘इस पर एक फ़कीर का जादू है,’ सार्जेंट मेजर ने कहा, ‘एक बहुत पवित्र आत्मा का’। उसने यह साबित करना चाहा था कि भाग्य ही मनुष्यों के जीवन को शासित करता है और जो उसके काम में हस्तक्षेप की कोशिश करता है उसे पछताना पड़ता है। फ़कीर ने इस पर ऐसा जादू किया है कि तीन भिन्न-भिन्न आदमी इससे अपनी तीन इच्छाओं की पूर्ति करा सकते हैं।’

उनके कहने का ढंग इतना प्रभावशाली था कि श्रोताओं को लगा कि इस सम्बन्ध में उन लोगों की हलकी हँसी उचित नहीं है।

“अच्छा, आपने इससे अपनी तीन इच्छाएँ पूरी

क्यों नहीं कराईं?’ हरबर्ट व्हाइट ने चालाकी से पूछा।

सार्जेंट मेजर ने उसकी ओर इस तरह देखा, जैसे अनुभवी और परिपक्व व्यक्ति अनुभवहीन युवक की ओर देखता है। “मैंने इच्छाएँ पूरी कराईं” उन्होंने शान्तिपूर्वक कहा और उनका चमकदार चेहरा सफ़ेद पड़ गया।

‘आपकी इच्छाएँ मचमुच पूरी हुईं क्या?’ श्रीमती व्हाइट ने पूछा।

‘हाँ, सार्जेंट ने जवाब दिया और उनका गिलास उनके मचवृत दाँतों में टकरा गया।

‘क्या किसी और ने इससे कुछ चाहा था?’ बूढ़ी श्रीमती व्हाइट ने पूछा।

‘पहले व्यक्ति ने भी इससे इच्छाएँ पूरी कराई थीं’ जवाब मिला, ‘मुझे उसकी पहली दो इच्छाओं के बारे में नहीं मालूम पर तीसरी इच्छा उसकी मृत्यु के बारे में थी। और इसी प्रकार मुझे यह पंजा मिला।’

उनका स्वर इतना गम्भीर था कि सुनने वालों में एक सन्नता-सा छा गया।

‘यदि तुम्हारी तीनों इच्छाएँ पूरी हो गई हैं तो फिर तुम्हारे लिए इसका क्या उपयोग है, मारिम,’ बूढ़े श्री व्हाइट ने आख़र में कहा, ‘तुम इसे अपने पास क्यों रखते हो?’

सैनिक ने अपना सिर हिलाया। ‘ममफ़ लो, यो ही’ उन्होंने धीरे से कहा, ‘एक ख़याल आया कि इसे बेच दूँ, पर लगता है, बेचूँगा नहीं। इसमें बहुत काफी उत्पात हो चुका। और फिर, कोई इस ख़रीदेगा नहीं लोग सोचते हैं कि यह कोई पारव्यों की कहानी है और जो नहीं सोचते वे पहले उसकी परीक्षा और बाद में दाम चुकाने की बात कहते हैं।’

‘अगर तुम और तीन इच्छाओं की पूर्ति कराना चाहो, बूढ़े ने उनकी ओर ध्यान से देखते हुए कहा, ‘क्या तुम्हें सफलता मिल सकती है?’

‘मुझे नहीं मालूम’ सार्जेंट ने कहा, ‘मुझे नहीं मालूम।’ उन्होंने पंजा ले लिया और उसे सामने की उंगली और अंगूठे के बीच घुमाते हुए एकाएक आग में फेंक दिया। श्री व्हाइट के मुँह से हलकी-सी चीख निकली, उन्होंने झुक कर आग पर से उसे उठा लिया।

‘इसका जल जाना ही अच्छा,’ सैनिक ने संजी-दगी से कहा।

‘अगर तुम्हें इसकी आवश्यकता नहीं,’ बूढ़े ने कहा, ‘तो इसे हमें दे दो।’

‘मैं न दूंगा।’ उनके मित्र ने दृढ़ता से कहा, ‘मेने तो इसे आग में डाल दिया। यदि तुम अपने पास रखते हो तो परिणाम के लिए मुझे दोष न देना। मैं तो कहूँगा, एक समझदार आदमी की तरह उसे फिर आग में डाल दो।’

बूढ़े ने अस्वीकृत-स्वरूप सिग हिलाया और पंजे को गौर से देखा। ‘इससे अपनी इच्छाएँ कैसे पूरी कराते हो?’ उन्होंने पूछा।

‘इसे दाहिने हाथ में ले लो और जो इच्छा हो-उसे प्रकट करो,’ सार्जेंट मेजर ने कहा, ‘पर मैं परिणामों के बारे में तुम्हें चेतावनी देता हूँ।’

‘आब सहस्त्र रजनी की कहानी जैसा लगता है,’ श्रीमती व्हाइट ने कहा और भोजन परोसने की व्यवस्था करने लगी, ‘क्या आप इस पंजे से यह इच्छा नहीं करते कि मुझे चार जोड़े हाथ हो जाएँ।’

‘उन्होंने जेब से पंजा निकाला और परिवार के तीनों व्यक्तियों की हँसी फूट निकली। सार्जेंट मेजर ने भय की भावना में श्री व्हाइट का हाथ पकड़ लिया। ‘यदि इच्छा ही करनी है,’ उन्होंने कुछ कर्कशता से कहा, ‘तो कुछ समझदारी से कीजिए।’

श्री व्हाइट ने उसे फिर वापस जेब में डाल लिया, और कुर्बियाँ रख कर अपने मित्र से भोजन की मेज पर आने का आग्रह किया। खाने-पीने में सभी लोग पंजे की बात भूल गए और बाद में तीनों बैठ कर सार्जेंट मेजर के भारत-प्रवास के अनुभवों का अगला हिस्सा मंत्र-मुग्ध हो सुनते रहे।

‘आगर बन्दर ३ पंजे की कहानी उसकी दूसरी कहानियों से अधिक सच्ची नहीं है,’ सार्जेंट मेजर के, जो आखिरी ट्रेन पकड़ने की गुरज से बिदा हो चुके थे, जाने बाद हरबर्ट ने कहा, ‘तो हमें कोई खास फायदा न होगा।’

क्या आपने उन्हे उसक लिए कुछ दिया, पिता?’ श्रीमती व्हाइट ने अपने पति को गौर से देखते हुए कहा।

‘कुछ थोड़ा सा, उन्होंने बात को कुछ छिपाते हुए से कहा ‘वह चाहता नहीं था पर मेने उसे जबर्दस्ती दिया। उसने मुझपर फिर दबाव डाला कि मैं उसे फेंक दूँ।’

‘मुमकिन हैं’ हरबर्ट ने दिखावटी आतंक से कहा हम अभी, मराहूर और सुखी हो जाएँ। पिता जी पहले सम्राट होने की ही इच्छा क्यों न कीजिए, फिर तो मैं आप पर हुक्मत करने की हिम्मत न करूँगी।’

यह कह कर वह मेज के चारों ओर दौड़ गया और उसके पीछे-पीछे मैं हाथ में छोटा डंडा लिए उसे मारने की कोशिश कर ही थी।

श्री व्हाइट ने जेब से बंदर का पंजा निकाला और उसे सदेह की टांग से देखा। ‘सच्चाई यह है कि मैं नहीं जानता कि किस चीज के लिए इच्छा करें,’ उन्होंने धीरे से कहा, ‘लगता है, मेरे पास तो सब कुछ है।’

‘अगर आपका अपना घर हो जाए तो आप बहुत खुश हों, क्या नहीं पिता जी?’ हरबर्ट ने अपना हाथ अपने कंधे पर रखते हुए कहा, ‘अच्छा, दो सौ पौंड के इच्छा कीजिए, उससे काम चल जाएगा।’

पिता ने अपने अन्ध-विश्वास पर खुद ही लजा से मुस्कराते हुए पंजा ऊपर उठा लिया और पुत्र गम्भीर-मा चेहरा बनाए, जिस गम्भीरता में उसके द्वारा हँसने और कनखी मारने से कुछ कभी आ गई थी, पिता को पर बैठ कर कुछ प्रभावकर धुनें बजाने लगा।

‘मुझे दो सौ पौण्ड की इच्छा है,’ बूढ़े ने साफ-साफ कहा।

पिता को की एक मधुर आवाज ने मानो उन शब्दों का स्वागत किया पर तभी बूढ़े के सुँह से एक चौंका देने वाली चीख निकली। उनकी पत्नी और पुत्र उनकी ओर दौड़े।

‘इमने चल-फिर की,’ बूढ़े ने चिल्ला कर कहा और जमीन पर पड़े हुए पंजे की ओर नफ़रत से देखा, ‘उन्नी ही मेने इच्छा की, यह मेरे हाथ में सोंप की तरह, घूम गया।’

‘पर मैं कहीं हफए तो नहीं देखता,’ पुत्र ने उसे जमीन पर से उठा कर मेज पर रखते हुए कहा, ‘और मैं बाजी लगा कर कहता हूँ कि हफए कभी न आएँगे।’

‘यह आपकी कल्पना रही होगी, पिता,’ पत्नी ने श्री व्हाइट की ओर चिन्ता से देखते हुए कहा।

उन्होंने अपना सिर हिलाया। ‘यों कोई परवाह नहीं, कोई नुक़्तमान नहीं हुआ पर उससे मुझे धक्का जरूर लगा था।’

वे तीनों फिर आग के समीप बैठे और पिता और

पुत्र ने धूम्रपान खत्म किया। बाहर हवा जोरों से चल रही थी और उसके कारण जब दरवाजे पर खटखटाहट की आवाज हुई तो बूढ़े श्री व्हाइट बुरी तरह चौंक उठे। उन तीनों पर एक असाधारण और उत्पीड़क शान्ति छाई थी और तब तक छाई रही जब तक बूढ़े दम्पति सोने नहीं चले गए।

“मुझे उम्मीद है कि आपको रुपए एक बड़े भोल्ले में कस हुए बिछोने के ठीक बीचों-बीच मिलेंगे, “उन्हें रात्रि-नमस्कार करते हुए हरबर्ट ने कहा, और जब आप बिना मेहनत मिले उस धन को जब मैं रखते रहेंगे तो कोई भयानक चीज अलमारी के सिरे पर बैठी देखनी रहेगी।”

(२)

दूसरे दिन सुबह जब जाड़े की चमकदार धूप नारंगी की मेज पर बिखर रही थी तो हरबर्ट गत रात्रि के भयों का मजाक उड़ा रहा था। कमरे में एक नीरस सम्पूर्णता का सा भाव था जैसा कि पिछली रात में न था, और गंदा, मुड़ा-चुड़ा पंजा एक और लापरवाही से रख छोड़ा गया था जिमका मतलब था कि उसके गुणों में किसी को विश्वास नहीं।

“मैं समझती हूँ कि सभी सैनिक एक से होते हैं,” श्रीमती व्हाइट ने कहा, “और देखो तो भला, हमने उसकी बेमतलब बातों को कैसे ध्यान से सुना। इस जमाने में इच्छाओं की पूर्ति कैसे की जा सकती है? और अगर ऐसा हो भी तो दो मी पीण्ड से आपको नुकसान कैसे पहुँच सकता है?”

“यदि हाएँ उनके सिर पर आममान से गिरें,” मजाकिया हरबर्ट ने कहा।

“मारिस ने कहा कि ये सब बातें बड़े स्वाभाविक ढंग से होती हैं,” उसके पिता ने कहा, “तुम चाहो तो यह भी कह सकते हो कि ये बातें बिल सयोग से होती हैं।”

“अच्छा अगर रुपए मचमुच मिलें तो मेरे आने के पहले उसमें से कुछ खर्च न कर दीजिएगा,” मेचम उठते हुए हरबर्ट ने कहा, “मुझे डर है कि कहीं आप ओछे और लोमी न हो जाएँ और हम लोगों को आपसे नाता तोड़ना पड़े।”

इस पर उसकी माँ हँस पड़ी और उसे दरवाजे तक पहुँचाने गई और सबक पर जाते हुए उसे देखती रही। जब वह नारंगी की मेज पर लौटी तो अपने पति

के अन्धविश्वास का पुत्र द्वारा मजाक उड़ाए जाने पर बहुत खुश थी। पर इसके बावजूद जब डाकिए ने दरवाजे पर दस्तक दी तो वह हड़बड़ी में दौड़ी और जब डाकिए ने दरजी के बिल के अलावा और कुछ न दिया तो उसने अवकाश प्राप्त भार्जन्ट मेजरो की शराबखोरी की आदतों का जिक्र किया।

‘मेरा खयाल है कि वापस आने पर हरबर्ट पंजे का और मजाक उड़ाएगा। पति के साथ भोजन पर बैठते हुए उसने कहा।

मे कह सकता हूँ श्री व्हाइट ने खुद कुछ वीयर उडेलते हुए कहा, ‘इसके बावजूद उस चीज ने मेरे हाथ में चल-फिर की थी, मैं कसम खा सकता हूँ।”

‘यह आपका खयाल भर है,’ वूडी ने सान्त्वना देते हुए कहा।

‘नहीं, मैं ठीक कहता हूँ,’ पति ने कहा, ‘खयाल की कोई बात न थी। मैंने इच्छा ही की थी—पर बात क्या है?’

उसकी पत्नी ने कोई जवाब न दिया वह बाहर की ओर एक व्यक्ति के रहस्यपूर्ण कार्यक्लाप देख रही थी जो अनिश्चयता के भाव से घर में झोंक रहा था और घुमने के लिए निश्चय करने की कोशिश-मा कर रहा था। श्रीमती व्हाइट के दिमाग में दो सौ पीण्ड की बात तो थी ही, उन्होंने देखा कि वह अरिचित्त व्यक्ति अच्छे-खासे कपड़े पहने और नया, चमकदार सिल्क का हैट लगाए हैं। वह तीन बार दरवाजे पर रुका और फिर आगे बढ़ गया। चौथी बार वह दरवाजे पर हाथ रख कर खड़ा रहा और फिर उसे एकाएक खोल कर भीतर चला आया। तभी क्षण श्रीमती व्हाइट ने अपने हाथ पीछे ले जाकर अपने ऊपरी वस्त्र की डोरी खोल ली और पोशाक की वह जहरी चीज कुर्मा के गद्दे के नीचे रख दी।

फिर वह उस व्यक्ति को, जो घबराया-मा मालूम पड़ता था, कमरे में ले आई। उसने श्रीमती व्हाइट को चोरी-चोरी देखा और जब उन्होंने कमरे की अस्त-व्यस्तता और अपने पति के कोट के लिए, जिससे वे बगीचे में पढ़ने के लिए सुरक्षित रखा करते थे, लम्मा माँगी तो नवान्गनुक ने उस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। लगा कि वह कुछ दूधरी ही बातें सोच रहा हो। तब श्रीमती व्हाइट ने धैर्यपूर्वक, जितना कि ब्रिथों से संभव

है, प्रतीक्षा की कि वह काम की बातें शुरू करे। पर नवागन्तुक पहले विचित्र रूप से शान्त रहा।

‘मुझे यहाँ आने को कहा गया,’ अन्त में उसने कहा और झुक कर अपने पाजामे पर पड़ाई का एक टुकड़ा चुन लिया। ‘मै मा. एण्ड मेगिन्स कं० से आ रहा हूँ।’

बूढ़ी चौंक उठी। ‘क्या कुछ हो गया है?’ उसने घबड़ा कर पूछा, ‘क्या हर्बर्ट को कुछ हो गया है?’

उसके पति ने टोंका, घबड़ाओ मत, माँ उन्होंने जल्दी-जल्दी कहा, ‘बैठ जाओ, पहले ही निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश न करो। मुझे उम्मीद है, आप कोई बुरी खबर नहीं लाए महाशय, उन्होंने नवागन्तुक की ओर चिन्ता में देखते हुए कहा।

‘मुझे अफ़मोस है—’ उसने कहा।

‘क्या उसे चोट आ गई है?’ माँ ने पूछा।

उस व्यक्ति ने सहमति में सिर हिलाया।

‘बुरी तरह चोट आ गई है,’ उसने शान्ति से कहा ‘पर अब उसे कष्ट नहीं है।’

‘ओह, ईश्वर को धन्यवाद।’ बूढ़ी ने हाथ जोड़ कर कहा, ‘इसके लिए ईश्वर का धन्यवाद। धन्य...’

पर जब उसे इस आश्वासन का मतलब समझ में आया और उसने नवागन्तुक के चेहरे के अत्यन्त गंभीर भाव में अपने भय की पुष्टि देखी तो वह फूट-फूट कर रो पड़ी। फिर जब वह अम्हली तो उसने कुछ मंदबुद्धि पति की ओर घूम कर उनके हाथ पर अपना बूढ़ा हाथ रख दिया। फिर बहुत देर तक शान्ति रही।

‘हर्बर्ट मशीन में फँस गया था,’ नवागन्तुक ने अन्त में धीमी आवाज में कहा।

मशीन में फँस गया,’ श्री व्हाइट ने यंत्रचालित भाव कहा, ‘हाँ।’

वे खिचकी के बाहर शून्य दृष्टि से देखते बैठे रहे। उनके दोनों हाथों के बीच उनकी पत्नी का हाथ था और वे उसे उसी प्रकार दबा रहे थे जैसे चालीस साल पहले विवाह-पूर्व प्रेम के समय दबाने की उनकी आदत थी।

‘हमारी ओलाद में एकमात्र वही बचा था,’ उन्होंने धीरे से नवागन्तुक की ओर घूमते हुए कहा, ‘यह असह्य है।’

दूसरा व्यक्ति खोँसा और उठ कर खिचकी की ओर धीरे-धीरे गया। ‘कंपनी चाहती है कि मैं आपके इस बड़े नुक़सान में आपके प्रति उनकी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करूँ’ उसने किसी भी ओर देखे बिना कहा, ‘कृपया आप यह बात समझें कि मैं कंपनी का नौकर-मात्र हूँ और केवल उनके आदेशों का पालन कर रहा हूँ।’

कोई उत्तर नहीं मिला: बूढ़ी का चेहरा सफ़ेद पड़ गया, वे एकटक देख-ही थीं और उनकी साँस चलने की आवाज़ तक न सुनी जा सकती थीं। उनके पति के चेहरे पर वैसा ही भाव था जो उनके मित्र के चेहरे पर, बन्दर के पंजे से पहली इच्छा की पूर्ति के समय रहा होगा।

‘मैं कह रहा था कि माँ एण्ड मेगिन्स कं० इस बारे में अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं मानती,’ नवागन्तुक ने कहा, ‘उनका कोई भी दायित्व नहीं, पर आपके पुत्र की सेवाओं का ख़याल करके वे आपको कुछ रुपए मुआवज़े के रूप में देना चाहते हैं।’

श्री व्हाइट ने अपनी पत्नी का हाथ छोड़ दिया और अपने पाँवों पर खड़े होकर नवागन्तुक की ओर आतंक के भाव से देखा। उनके सूख गए होठों में केवल ये शब्द थे, ‘कितना?’

‘दो सौ पौण्ड,’ उत्तर मिला।

बूढ़ी ज़ोरों से खींची, पर बूढ़े को उसका ख़याल नहीं रहा। वे एक फीकी मुस्कान से हँसे और उन्होंने एक अधे की भोँति अपने हाथ फैला दिए और अचेत हो वहीं ज़मीन पर ढेर हो गए।

(३)

नए बड़े कब्रगाह में, जो दो मील पर था, बूढ़े दम्पति ने अपने पुत्र को दफनाया और अन्धकार और शांति में निमग्न घर लौट आए। सब कुछ इतनी जल्दी हो गया कि पहले तो वे उस ठीक से महसूस ही नहीं कर सके और वे इस आशा में थे कि शायद कुछ और हो—कुछ और जिससे उनका यह बोझ, जो उनके बूढ़े हृदयों के लिए बहुत भारी था, हल्का हो सके। पर दिन बीतते गए, और आशा का स्थान लेती गई विरक्ति—नैराश्यपूर्ण विरक्ति जिसमें कभी भी गलती से नफ़रत कड़ दिया जाता है। अब उनके बीच मुश्किल से ही कोई बातचीत होती, क्योंकि बातचीत के लिए कुछ भी शेष

न रह गया था, और उनके दिन बिताए न बीतते थे।

फिर एक सप्ताह बाद बूढ़े ने रात में एकाएक जाग जाने पर जब अपना हाथ बढ़ाया तो देखा कि वे अकेले हैं। बाहर खिड़की से धीमे धीमे रोने की आवाज आ रही थी। वे बिछावन पर उठ बैठे और सुनने लगे।

‘बापम आ जाओ,’ उन्होंने कोमलता से कहा, ‘‘तुम्हें ठण्ड लग जाएगी’

‘मेरे बच्चे के लिए तो इससे भी ज़्यादा ठण्ड है,’ बूढ़ी ने कहा और फिर रोने लगी।

बूढ़ी की सिस्किओं की आवाज थम गई थी। बिछावन गरम था और बूढ़े की आँखें नींद से भारी। वे ऊँघते रहे और फिर सो गए। तब एकाएक बूढ़ी की चिल्लाहट से वे चौक कर उठ गए।

‘बन्दर का पंजा!’ बूढ़ी ने जोरों से चिल्ला कर कहा, ‘बन्दर का पंजा!’

वे इससे डर से गए। ‘कहाँ? कहाँ है वह? बात क्या है?’ वह कमरे में, लखखड़ाती हुई बूढ़े के पास आई। उसकी ज़रूरत है, उसने शांति से कहा, ‘आपने उसे नष्ट तो नहीं कर दिया।’

‘वह बैठक में है, दीवारगीर के ऊपर,’ बूढ़े ने उत्तर दिया, आश्चर्य-घा कते हुए, ‘पर क्यों?’

बूढ़ी ज़ोरों से चिल्लाई और हँसी भी, और उसने झुक कर पति के गाल चूम लिए।

‘मेने उसके बारे में अभी सोचा है,’ वह पागल की तरह बोली, ‘वफ़, मेने उसके बारे में पहले क्यों नहीं सोचा? आपने भी क्यों नहीं सोचा?’

‘किस चीज़ के बारे में,’ उन्होंने पूछा।

‘अभी दो इच्छाएँ बाज़ी हैं,’ उसने जल्दी-जल्दी उत्तर दिया, ‘हमारी तो एक ही इच्छा पूरी हुई है।’

‘पर क्या उतना ही काफी नहीं? बूढ़े ने रोष में पूछा।

‘नहीं,’ उसने विजय के भाव से चिल्ला कर कहा, ‘हम अपनी एक इच्छा और पूरी कराएँगे। बैठक में जाइए और उसे जल्दी ले आइए और इच्छा कीजिए कि हमारा लखका फिर से जी उठे।’

बूढ़ा बिछावन से उठ बैठे और उसने अपने थरते हुए शरीर से चादर उतार फेंकी। ‘वफ़, ईश्वर, तुम पागल हो गई हो।’ उसने भय से चिल्ला कर कहा।

‘उसे ले आइए,’ वह हाँफती हुई बोली, ‘उसे जल्दी ले आइए और इच्छा कीजिए—ओह, मेरा बच्चा, मेरा बच्चा।’

उसके पति ने दियासलाई से मोमबत्ती जलाई। ‘आओ, जाकर सो रहो,’ उन्होंने आस्थिरता से कहा, ‘तुम्हें नहीं मालूम कि तुम क्या कह रही हो।’

‘हमारी पहली इच्छा पूरी हो गई,’ बूढ़ी ने उद्विग्नता से कहा, ‘फिर दूसरी इच्छा भी क्यों न पूरी हो?’

‘सब कुछ एक संयोग मात्र था,’ बूढ़े ने लखखड़ाती ख़बान से कहा।

‘जाइए और उसे ले आइए और इच्छा कीजिए,’ बूढ़ी ने चिल्ला कर कहा और उन्हें खींच कर दरवाज़े तक ले गई।

वे अंधेरे में नीचे गए और टटोलते हुए बैठक और दीवारगीर तक पहुँचे। बन्दर का पंजा ठीक जगह पर रखा हुआ था। उनके मन में यह भयानक भय उमड़ आया कि कहीं व्यक्त न की गई उनकी इच्छा के कारण बैठक से जाने के पूर्व ही उनका घायल लड़का सामने आ खड़ा हो। और जब उन्होंने पाया कि वे दरवाज़े का रास्ता ही अंधेरे में भूल गए हैं तो उनकी सौम जोरों से चलने लगी। उनकी ओहँ पसीने में भीग गई थीं, उन्होंने मेज़ टटोल कर रास्ता मालूम करने की कोशिश की और फिर दीवार टटोलते और आगे बढ़ते हुए, हाथ में वह भयानक चीज़ लिए वे छोटे गलियारे तक पहुँच गए।

जब उन्होंने कमरे में प्रवेश किया तो देखा कि पत्नी के चेहरे का भाव भी परिवर्तित हो गया है। उसका चेहरा सफेद और आशान्वित था और बूढ़े को ऐसा लगा कि उस पर एक अस्वाभाविक भाव था। उन्हें उससे डर-सा लगा।

‘इच्छा कीजिए!’ उसने चिल्ला कर कड़ी आवाज़ में कहा।

‘यह बेवकूफी और दुष्टता होगी’ वे लखखड़ाते हुए बोले।

‘इच्छा कीजिए।’ पत्नी फिर बोली।

उन्होंने हाथ ऊपर उठा कहा, मैं चाहता हूँ कि मेरा लखका जी जाए।’

बन्दर का पंजा ज़मीन पर गिर गया और उन्होंने

कांपते हुए उसे देखा। फिर वे कुर्सी में गिर गए और उनकी बूढ़ी पत्नी जलती हुई आँखों से, खिड़की तक गई और उसने झिलमिली उठा दी।

वे तब तक बैठे रहे जब तक बाहर से आनेवाली हवा अत्यधिक ठण्डी न हो गई, बीच में खिड़की से बाहर झाँकती हुई बूढ़ी की आकृति को भी देखते जाते थे। मोमबत्ती जो करीब-करीब पूरी जल चुकी थी, काँपती लौ की रोशनी से छत और दीवार पर काँपती छायाएँ पड़ रही थीं और अंत में एका-एक बहुत रोशनी करके मोमबत्ती बुझ गई। बूढ़ा, बन्दर क पंजे की असफलता पर अवर्णनीय राहत की भावना से, बिछावन पर चला गया और उसके एक या दो मिनट के बाद उनकी पत्नी भी शांति से, नफरत की भावना के साथ उनकी बगल में आ लेटी।

दोनों में म कोई कुछ न बोला और दोनों ही, चुपचाप, लेटे-लेटे घड़ी की टिक-टिक सुनते रहे। एक सीढ़ी पर कुछ खड़खड़ाहट हुई और एक उपद्रवी चूहा आवाज करते हुए दीवार के पास से गुजर गया। कमरे का झेंपेरा दम घोटने वाला था। कुछ देर लेटे रहने के बाद पति ने माहस बटोर कर दियामलाई जलाई और वे नीचे मोमबत्ती ढँढ़ने चले गए।

सीढ़ियों पर करते-करते दियासलाई बुझ गई और वे दूसरी जलाने के लिए झुके, और उसी समय बाहर दरवाजे पर बहुत धीमे सुन सकना मुश्किल था, दस्तक हुई।

दियासलाईयाँ उनके हाथ में गिर गईं। वे दूसरी गतिशून्य से खड़े रहे और उनकी माँस रुक सी गई थी कि दरवाजे पर फिर दस्तक हुई। तब वे पीछे मुड़े और अपने कमरे की आर भागे और उन्होंने दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। दरवाजे पर तीसरी दस्तक इतनी जोरों से हुई कि उसे पूरे घर में सुना जा सकता था।

‘यह क्या है? वूढ़ी ने चौक कर उठते हुए पूछा।

‘चूड़ा है,’ कांपनी आवाज में बूढ़े ने कहा, ‘एक चूड़ा सीढ़ियों पर मेरे पास से गुजरा था।’

पत्नी बिछावन पर बैठ कर सुनने लगी। एक और जोरों की दस्तक हुई और मसूचे घर में गूँज गई।

‘यह हरबर्ट है।’ वूढ़ी ने चीख कर कहा, ‘यह

हरबर्ट ही है।’

वह दरवाजे की आर दौड़ी, पर उसके पति सामने आ गए और उसका हाथ पकड़ कर उसे आगे बढ़ने से रोक लिया।

‘तुम यह क्या करने जा रही हो?’ उन्होंने कर्कशता से फुमफुपाते हुए कहा।

‘यह मेरा लड़का है: यह हरबर्ट है।’ पति से छूटने की कोशिश करती हुई वह चिल्लाई, ‘मैं भूल गई थी कि कबगाह यहाँ से दो मील दूर है। आप मुझे रोक क्यों रहे हैं? जाने दीजिए। मुझे दरवाजा खोलना ही है।’

‘इश्वर के लिए उसे अन्दर न आने दो,’ बूढ़े ने काँपते हुए चिल्ला कर कहा।

‘आपको अपने ही लड़के से डर है,’ वूढ़ी ने छूटने की कोशिश करते हुए कहा, ‘मुझे जाने दीजिए। मैं आ रही हूँ, हरबर्ट, मैं आ रही हूँ।’ दरवाजे पर फिर दस्तक हुई, और फिर एक और। वूढ़ी ने पति से अपने को छुड़ा लिया और कमरे से भागी। उसके पति सीढ़ी तक उसके पीछे आए और जब वह सीढ़ियों से जल्दी-जल्दी उतर रही थी, उन्होंने उससे वापस आने के लिए फिर अनुरोध किया। उन्होंने सुना कि वूढ़ी ने दरवाजे की सिटकनी खोल दी और वह नीचे की सिटकनी धीरे-धीरे उठा रही है। और तभी जोरों से दौँकती हुए वूढ़ी की तनावपूर्ण आवाज सुन पड़ी।

‘ऊपर की भी सिटकनी बंद है,’ वह चिल्ला कर कह रही थी, ‘नीचे आ कर खोल दीजिए। मैं उसे नहीं पा सक रही हूँ।’

पर उसके पति फर्श पर हाथ और घुटनों के बल बैठ कर झेंपेरे में बंदर का पंजा खोज रहे थे। यदि बाहर के व्यक्ति के घर में घुसने के पहले ही वह मिल जाता। इस बीच बाहर दरवाजे पर दस्तकों की बौछार सी होने लगी और उसमें मसूचा घर गूँज रहा था और तब उन्होंने सुना कि उनकी पत्नी दरवाजे तक एक कुर्सी खिसका रही है ताकि सिटकनी तक उसका हाथ पहुँच सके। फिर उन्होंने सिटकनी खोचे जाने की आवाज सुनी, और ठीक उसी क्षण उन्हें बन्दर का पंजा मिल गया और उन्होंने एक प्रकार के पागलपन से अपनी तीसरी और अन्तिम इच्छा कह दी।

दरवाजे पर दस्तकें सहसा रुक गईं, यद्यपि उनकी

प्रतिध्वनि अभी भी घर में गूँज रही थी। उन्होंने सुना कि कुर्सी हटाई जा रही है और दरवाजा खुल गया है। सीढ़ियों की ओर हवा का एक ठण्डा झोंका आया और अपनी पत्नी को निराशा और विपत्ति की एक लम्बी,

तीव्र आह से उन्हें साहस हुआ और वे दौड़ कर उसके पास और फिर दरवाजे के बाहर गए। मकान के सामने टिमटिमाती सड़क की बत्ती के प्रकाश में उन्हें शान्त और सूनी सड़क दीख पड़ी।

खास महाल, रोड नं० २
चिरैयाटांड,
पटना—१

मू० ले० — डब्ल्यू डब्ल्यू जैनकस
अनु० — लीलाधर त्रिवेदी

चाय-पान

सबसे पूर्व १७१७ ई. पूर्व एक चीनी सम्राट के बगीचे में चाय का पीना प्रारम्भ हुआ। इसका प्रचलन सर्व-साधारण में इसकी तीन सदियों के पश्चात् हुआ। डच लोग पश्चिमी यूरोप में चाय को लाए। १६५७ ई. में लंदन के एक प्रसिद्ध काफी-हाउस के द्वारा चाय-पान को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया गया। धीरे धीरे चाय का पीना एक फैशन बनने लगा और धनी लोग ६ पौण्ड से १० पौण्ड तक एक पाउण्ड चाय के लिए मूल्य देते थे। सैमुअल पैपीज ने १६६० ई. में चाय का पहला प्याला पिया था। १८ वीं सदी में चाय इंग्लैंड का राष्ट्रीय पान बन गई। श्रीयुन डा. जौनसन ने जो कि बहुत अधिक चाय पीने थे अपने आप को “चाय का सख्त और निर्लज्ज पियकफ़” कहा। इसके पश्चात् चाय पर कर लगाया गया परन्तु इससे चाय लुप्त-होने लगी। इसलिए पीछे से चाय पर कर पर्याप्त रूप से घटा दिया गया।

१८२३ ई. तक समस्त विश्व को चाय चीन से प्राप्त होती थी। इसके पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि चाय का पोषा भारतवर्ष में भी होता है। यह संभव है कि चीनी लोग चाय के पौधे को भारतवर्ष से अपने देश में ले गए थे। आज भारतवर्ष में दस लाख एकड़ भूमि में चाय की खेती होती है। १८३६ ई. से लंदन में भारतवर्ष की चाय पहुंचने लगी। तीस वर्ष पश्चात् सीलोन में चाय का उत्पादन होने लगा। विदेशों में चाय बेजने वाले प्रदेशों में इस समय सीलोन का दूसरा नम्बर है।

—डब्ल्यू. एच. भावेन्स

राजस्थानी-साहित्य की परम्परा और प्रगति

यह कहना अनुचित न होगा कि राजस्थान के एकीकरण के बाद वह सामाजिक उर्बरा भूमि तैयार हो गई है जिससे इस प्रदेश की विभिन्न बोलियों को एक दूसरे के संपर्क में आने का, उनमें निहित विचारों के आदान-प्रदान का और उनकी अपनी विरासत को समझने का व्यापक अवसर मिल रहा है। यही कारण है कि आज राजस्थानी की बात करने वालों की संख्या काफी बढ़ गई है।

राजस्थान के एकीकरण के पहले भी देश और विदेश के विद्वानों ने राजपूताना के विभिन्न रजवाड़ों में उपलब्ध लिखित और मौखिक साहित्य का सम्पादन किया था।

वैसा करने में विदेश के विद्वानों ने देश 'क' विद्वानों की सहायता से इस प्रकार के उपलब्ध साहित्य को पढ़ाकर देव नागरी लिपि में संग्रहित किया था। इन विदेशी लेखकों ने साहित्य के संपादन में यदा कदा व्याकरण की उन अनेकताओं की ओर भी ध्यान दिलाया जो उन्हें इस प्रदेश की विभिन्न बोलियों में मिली। इस सम्बन्ध में तासितोरी का प्रयास उल्लेखनीय है, जिन्होंने पश्चिमी राजस्थानी व्याकरण का सामंजस्य और उसे समुचित रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया। लेकिन देश और विदेश के ये लेखक उस समय की प्रचलित लिपि और उनके उच्चारण की गत्यात्मकता को पूर्ण रूप से नहीं समझ सके। इसका मूल कारण यह था कि देवनागरी लिपि ने उनके सामने ऐसी उस समय कोई अव्ययन पैदा नहीं की थी जिससे उस साहित्य के संग्रहण में उन्हें कोई कठिनाई होती। मच बात तो यह है कि जो लिपि उस समय उपलब्ध थी उसका विकसित रूप ही तो देवनागरी लिपि है। इसलिए चाहे तो यह था कि उस उपलब्ध लिपि का अध्ययन किया जाता और देवनागरी लिपि के विकास के इतिहास की खोज की जाती। इस तरह राजस्थान के बनने के पहले जो भी साहित्य उन्हें प्राप्त हो सका था उसका सम्पादन उन्होंने बड़े संचार रूप से किया। इस संपादन के समय उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि जिस साहित्य का संग्रहण

वे कर रहे हैं वही साहित्य आगे जाकर उसकी अपनी गत्यात्मकता और तर्क के कारण स्वतन्त्र रूप से प्रकट होने का प्रयास करेगा।

एक प्रकार से उस समय के राजस्थानी साहित्य की प्रगति इस प्रकार के संपादनों तक ही सीमित थी। और राजस्थानी साहित्य ङिगल साहित्य माना जाकर हिन्दी भाषा से सम्बन्धित माना जाने लगा। ङिगल साहित्य की जो कुछ अपनी गत्यात्मकताएँ थीं वे उस समय तो दबी पड़ी रहीं लेकिन बाद में उसकी व्यापक मान्यताएँ हिन्दी की व्यापकता में मिल गई।

राजस्थान के बनने के बाद जब विभिन्न रजवाड़े के लोगों को अपने-अपने स्थानों को छोड़ अपने जीवन-यापन और विभिन्न कर्मों के लिए तीव्र गति में एक जगह से दूसरी जगह आना पड़ा तो उन्हें लगा कि इन विभिन्न बोलियों को विविधता के बावजूद भी परस्पर समझा जा सकता है। उनमें एक विशिष्ट प्रकार की समझ में आने वाली एकात्मकता है। इस समझ का प्रतिनिधित्व राजस्थान में रहने वाले विद्वत्त समाज के एक तबके ने 'राजस्थानी भाषा' की बात उठा कर किया। उनमें से राजस्थानीदों लेखकों ने हिन्दी व्याकरण के आधार पर, बिना यह समझे कि इन विभिन्न बोलियों का सम्बन्ध जब, कभी 'राजस्थानी भाषा' के रूप में होगा तब शायद हिन्दी की देवनागरी लिपि राजस्थानी उच्चारण को समुचित रूपसे अपने दाग पकट नहीं कर सकेगी—एक राजस्थानी का व्याकरण भी तैयार कर दिया। वे यह भूल गए कि देवनागरी लिपि अपने विकास के कारण राजस्थान की विभिन्न बोलियों की लिपि बनने को उपयुक्त माध्यम नहीं हो सकेगी। राजस्थानी भाषा की बात तो इन्होंने उठा ली लेकिन अपने अस्तित्व की सीमितता के कारण ये विद्वान् राजस्थान के विभिन्न भागों में बोली जाने वाली बोलियों का अध्ययन और सम्पादन राजस्थानी के रूप में व्यापक तौर पर नहीं कर सके। वे अपनी बोलियों में साहित्य सृजन करने लगे। लेकिन, प्रयासों की कमी के बावजूद राजस्थान प्रदेश में एक ऐसा समुदाय तैयार हो रहा है जो राजस्थानी को

एक स्वतन्त्र भाषा मान कर चलने लगा है।

इस समुदाय का कहना है कि जो भी प्राचीन ङ्गल साहित्य उपलब्ध है उसका हिन्दी से कुछ लेना-देना न होकर वह प्राचीन राजस्थानी का साहित्य है। ङ्गल साहित्य को हिन्दी साहित्य में माना जाय या राजस्थानी भाषा का स्वतंत्र साहित्य यह एक विवादास्पद प्रश्न है। हिन्दी विद्वानों और राजस्थानी विद्वानों में कौन विजयी होगा, यह आने वाली पीढ़ी के लिए विचारणीय विषय है। 'ढोला मारु' और 'वेलिरी कृष्णरी रुकमणीरी' किसकी हिन्दी की या राजस्थानी की ?

देश विदेश के लेखकों को राजपूताना की विभिन्न बोलियों के प्राचीन साहित्य के सम्पादन के बाद इन बोलियों की लिपि और भाषा की बात उठानी चाहिए थी। इन विभिन्न बोलियों की देवनागरी में भिन्न अपनी एक मुद्रिया लिपि थी। आज भी उसका प्रयोग कई लोगों द्वारा किया जा रहा है। यह लिपि देवनागरी लिपि में मिलती-जुलती लिपि है। आज हर वैज्ञानिक भाषा को चाहिए कि वह अपने वर्णों का चयन इस रूप में करे कि उसमें उच्चारण और लिपि का सामंजस्य हो। यदि 'क' बोला जाता है तो 'क' लिखा भी जाना चाहिए। अंग्रेजी भाषा की तरह 'क' बोले जाने के लिए (के क) का प्रयोग न होना चाहिए। नदाहरण देकर इस बात को और भी स्पष्ट किया जा सकता है। राजस्थान की एक बोली का एक गीत है :

“भालो लागे देशडलो मारो”

इम गीत में 'भाले' में भा और मारो में तो ऐम वर्ग हैं जिनके लिपि और उच्चारण में साम्य नहीं है। इम साम्य के कारण कुछ लेखक इसे इम प्रकार भी लिखने लगे हैं।

म्हालो लागे देशडलो म्हारो।

लेकिन ऐसा करने पर भी लिपि और उच्चारण की समस्या सुलझ नहीं सकी है। उर्दू की तरह 'द' को 'ध' बनाने के लिए “दुचरमी हे” लगानी की परिपाटी यहाँ काम नहीं देगी। यहाँ देवनागरी लिपि की तरह 'ग' में मिलने पर भी बड़े 'घ' के उच्चारण के लिए एक नए वर्ण 'घ' को प्रयुक्त करना होगा। नहीं तो 'भालो' जिनका अर्थ एक प्रकार दृष्टिग्रह होता है और 'भालो' जिनका अर्थ यहाँ 'प्यारा' से है में अ-

समंजस उत्पन्न हो जाएगा। वर्ण के बाद शब्द के चयन की बात आती है। राजस्थानी में इसी 'भालो' से बने दो और संज्ञा पद शब्द लीजिए 'भायलो' और 'भायली'। भाषा शास्त्री को यह समझाना होगा कि 'भायली' शब्द में 'य' का वर्णमूक कैसे हुआ है। और कैसे इस शब्द में ओकारान्त और इकारान्त से लिंग भेद हुआ है। लेकिन यह सब करने में लिपि में और उच्चारण में ध्वनि साम्य तो रहना ही चाहिए।

इम समस्या का हल यदि राजस्थानी के समर्थक चाहें तो देवनागरी के अतिरिक्त राजस्थानी बोलियों की विभिन्न लिपियों विद्यमान है, उनसे वर्णमाला का चयन कर लिया जा सकता है ताकि राजस्थानी की जो प्रगति ङ्गल आदि साहित्य के संपादन में अवरोध हो गई है, उसका द्वार फिर से खुल जाए।

प्रश्न उठता है यदि इम प्रकार की एक वर्णमाला और ऐसा व्याकरण तैयार हो गया तब क्या होगा ? तब राजस्थानी भाषा को वैधानिक रूप से प्रांतीय भाषा बनवाने के लिए एक आन्दोलन का श्रीगणेश होगा। हो सकता है सुदूर भविष्य में बम्बई द्विभाषी राज्य की तरह राजस्थान में भी ऐसी प्रवृत्तियाँ जाग्रत हों। प्रांतीयता और राष्ट्रीयता को इममें प्रश्रय मिलेगा। इसलिए राष्ट्रवाद के विगत इतिहास का अध्ययन राजस्थानी भाषा के समर्थक करें तो हो सकता है राजस्थानी का सृजन विभिन्न मानवीय लीकों और परिपाटियों पर होने लगे।

इसके लिए हमें देखना है कि राजस्थान में उपलब्ध इम साहित्य में किन परम्पराओं और मान्यताओं का सृजन हुआ है और हो रहा है। प्राचीन राजस्थान के साहित्य में जिन स्थापनाओं को लिया गया है वे नीमित व्यापकता के बावजूद संकुचित संकीर्णता लिए हैं। इसका जीता जागता उदाहरण 'ढोला मारवण' है। स्वयं 'ढोला मारवण' में बाल विवाह की परम्पराओं में प्रेमख्यान और प्रेमालाप के कथोपकथन के ताने-बाने को बुना गया है। वहाँ नारी को संकीर्ण यौन आचारों में बाँध मनुष्य की उच्छृंखल पाशावक प्रवृत्ति का बहुपत्नी विवाह (Bigamy) के दायरे में स्वतन्त्र और विश्वापित प्रेम को समन्वित करने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार की संकीर्ण मान्यताएँ 'राजस्थानी की

अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियों' में भी व्यवहृत है। उन सबको लेना यहाँ अप्रासंगिक होगा।

राजस्थान संस्कृति की दृष्टि से पिछड़ा हुआ प्रदेश होने के कारण यहाँ का साहित्य नृ-विज्ञान की दृष्टि से महत्व की चीज हो सकता है न कि पुनरुत्थान और पुनरावर्तन की दृष्टि से राजस्थान के जन-मानस में वास्तविक लोक परम्पराओं को सम्बल नहीं मिल सका है। यहाँ का प्राचीन साहित्य और लोक साहित्य अधिकांश मात्रा में कलुषित रहा है। यही कारण है कि राजस्थान के अर्वाचीन साहित्य के मानस में लोक साहित्य की प्रतिष्ठा तो अधिक है, लेकिन लोक साहित्य में जो सही लोक अभिव्यक्ति आनी चाहिए थी उन तत्वों का वहाँ अभाव रहा है। अतः जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य चेतना तथा आधुनिक अर्थ की ध्वनि वहाँ आनी चाहिए थी वह वहाँ नहीं आ पा रही है। लोक साहित्य

में जो तुम्हारे तत्त्व विद्यमान था उसका प्रतिषेध उत्पन्न स्तर पर नहीं हो सका है। यदि राजस्थानी भाषा ने इन्हीं तथाकथित लोक-साहित्य और परम्पराओं के आधार पर अपनी भाषा का पुनरुज्जीवन किया तो संभव है कि इस भूभाग में रहने वाली मानव सभ्यता कुछ काल के लिए अवरुद्ध हो जाय।

आज राजस्थानी के प्रसार के नाते ही नहीं वरन् स्वस्थ परम्परा के लिए भी यह आवश्यक है कि जहाँ कहीं भी स्वस्थ, मानवीय और मनोमय आत्म प्रबोधिनी रसपूर्ण उक्तियाँ, आत्म निवेदित गीतियाँ, उद्योग और श्रम सहवर्ती गीत ध्वनियाँ, मोदिनी और उपयोगी वार्ताएँ अनुष्ठानिक गीतिकहानियाँ तजोख्यान और साके जहाँ कहीं भी विद्यमान है उसका समुचित सूचकांकन किया जाना चाहिए। इससे लोक मानस की प्रतिष्ठा तो बढ़ेगी ही लेकिन उससे राजस्थान के भविष्य को भी दृढ़ संबल मिलेगा।

द्वारा : जुगल भवन,
परिषद् कालेज के सामने,
बनी पार्क, जयपुर (राजस्थान)

—रामचन्द्र 'बोधा'

जब कवि क्रुद्ध होते हैं

आन्ध्र प्रदेश में यह प्रसिद्ध है कि पेड़ापुरम् दुर्ग का नाश कवियों के क्रुद्ध होने से हुआ। इस सम्बन्ध में तेलुगु के एक आधुनिक कवि तिरुपति वेंकटेश्वर ने लिखा है।

“पेड़ापुरम् कोट पेदाम्म यिलौट

कवि बरेययलु कोप-कलन गादे”

—अर्थात् कवियों के क्रुद्ध हो जाने से पेड़ापुरम् का दुर्ग एक बुद्धि का उजड़ा

हुआ घर बन गया।

—‘तेलुगु साहित्य के इतिहास’ से

चिरस्मरणीय नेता श्री गोपाल कृष्ण गोखले

बात कुछ पुरानी है, उस समय की जब कि भार-तीय नेतागणों के दर्शनों के लिए आज जैसी भीड़भाड़ नहीं हुआ करती थी। जनता में उस समय उत्साहातिरेक तो था परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यशाही के क्रूर पंजों के डर से वह सादगी से अपने जननायकों का स्वागत करने के लिए विवश थी। उन दिनों के नेतागण भी स्वागत सरकार, फूलमाला, फोटो इत्यादि को आज के नेता गणों की अपेक्षा कुछ कम ही पसन्द किया करते थे। उनमें जन कल्याण की ही भावना कूट-कूट कर भरी होती थी। प्रदर्शन और भीड़भाड़ को वे अधिक महत्व नहीं देते थे। ऐसे ही समय की एक दिन की यह घटना है। कलकत्ते में कुछ छात्र अपने श्रद्धासुमन अर्पित करने-के लिए एक भारतीय नेता के समीप गए हुए थे। मुलाकात समाप्त हो जाने पर जब सब लश्के चले गए तब एक लश्का वही बैठा रह गया।

नेता महोदय ने आश्चर्यचकित होते हुए मृदुल स्वर से प्रश्न किया—“क्या चाहते हो, भाई”

बालक ने उत्तर दिया—“आपका आशीर्वाद चाहता हूँ।”

नेता महाशय गम्भीर हो गए। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से उन्होंने अनुमान लगा लिया कि यह बालक कोई साधारण बालक नहीं और जो आशीर्वाद वह चाहता है वह भी कोई साधारण आशीर्वाद जैसे ‘फूलो-फलो’, ‘खुश रहो’ इत्यादि की किस्म का नहीं है। बालक की परीक्षा लेते हुए उन्होंने कहा :

‘मेरे आशीर्वाद से तुम्हें जीवन में सुख न मिल कर दुःख ही अधिक मिलेगा।’

बालक ने तनिक सोचा। वह कोई साधारण बालक न था जो कि परीक्षा में कच्चा उतरता। उसने कहा—“चाहे कुछ भी हो, किन्तु आप जैसे महान् पुरुष का आशीर्वाद मुझे चाहिए। बताइए, किस प्रकार मनुष्य महान् हो सकता है।”

बालक की दृढ़ प्रतिज्ञा देखकर नेता महाशय को अन्त में झुकना ही पड़ा। अपने जीवन के समस्त अनुभव का निचोड़ उन्होंने कह दिया—“भाई, पढ़ लिख

कर मैंने खुब रुपया कमाया चाहा परन्तु सदा मेरे मन में एक ही बात खटकती रहती थी कि रुपया पैसा तो सब नष्ट हो जाने वाला है। कुछ ऐसा करना चाहिए जो अमर रहे। अन्त में मैंने सब को छोड़ कर सुख, ऐश्वर्य और आराम त्याग कर दुःख का मार्ग चुन लिया और वह भी देश की सेवा। किसी दिन मेरा छोटा-सा परिवार था, उसी को सुख देने की बात सोचता था। परन्तु आज देश ही मेरा परिवार है, उसी को सुखी बनाना मेरा उद्देश्य है। अगर तुम चाहो तो संसार में महान् बनने के लिए बस यही एक मार्ग है। किन्तु इस मार्ग में आने के लिए शिक्षा प्राप्त करना जरूरी है।”

उपरोक्त वाक्य बालक के हृदयपटल पर भवेद के लिए अंकित हो गए।

उपरोक्त नेता महाशय और बालक की आज केवल भारत में ही नहीं वरन् संपूर्ण विश्व में ख्याति है। आज वह बालक देश का एक महान् पुरुष है और वे महान् नेता स्व० हो जाने पर भी हमारी स्मृति में सदैव के लिए अमर हैं। वह बालक ये आज के हमारे राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और नेता ये स्व० श्री गोपाल कृष्ण गोखले।

× × ×

चिरस्मरणीय महान् नेता स्व० श्री गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म एक साधारण स्थिति के परिवार में ६ मई सन् १८६६ ई० को महाराष्ट्र प्रदेश के रत्नागिरि जिले में चिपलूण तालुका के मध्य स्थित कौतुलक ग्राम में हुआ था। ग्राम में शिक्षा की कोई सुविधा न होने के कारण १० वर्ष की आयु में ही उन्हें शिक्षा के निमित्त बड़े भाई के साथ कोल्हापुर में भेजा गया। सन् १८७६ में ही पिता का अकस्मात् निधन हो जाने के कारण समस्त परिवार पर दुःख का जैसे पहाड़ टूट पड़ा। बड़े भाई की पढाई छूट गई चार बहनें और छोटे भाई गोपाल की पढाई का व्यय अपनी छोटी सी १५ मासिक की तनख्वाह में चलाते हुए गोविन्दराव ने अपूर्व माहस का परिचय दिया। गोपाल का प्रारंभिक जीवन इस प्रकार साधनाओं की भट्टी रहा जिसमें तप कर उनका जीवन

कुन्दन के सदृश निखरा। बचपन में उनकी स्मरणाशक्ति की तीव्रता के संबंध में उल्लेखनीय बात वही है कि उनमें और सहपाठियों में अक्सर याद कर के सुनाने पर होक लग जाती। गोपाल पुस्तक याद कर बिना किसी वाक्य या शब्द को छोड़े पूरा का पूरा पाठ जवानी सुनाया करते थे और सहपाठी मदैव हार जाया करते। सबको पर लगे लैम्पों की रोशनी में पाठ याद करते हुए उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी वे विचलित न हुए वरन् दरिद्रता ने उन्होंने कठेव्य के प्रति कठोरता और जीवन के प्रति अधिक जागरूक बना दिया।

पंद्रह वर्ष की आयु होते न होते चाचा ने विवाह बन्धन में बन्ध जाने के लिए उन्हें विवश कर दिया। विवाह हो जाने पर भी उनका अध्ययन न रुका, अपनी अनेखी लगन का परिचय देते हुए कोल्हापुर के राजाराम कालेज, पूना के डेक्कन कालेज और बम्बई के एल्फिन्स्टन कालेज में अध्ययन करते हुए अन्त में सन् १८८४ में उन्होंने बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर ली। धन कमाने का मार्ग उनक सामने खुला था मगर उससे आकर्षित न होते हुए उन्होंने अध्यापक बन कर देश की सेवा करना स्वीकार किया। त्यागवृत्ति के आधार-भूत। सदाशैली पर स्थापित 'डेक्कन एज्युकेशन सोसाइटी' में केवल ३५) महावाग् वेतन लेकर गोखले इस संस्था के आजीवन सदस्य बन गए और २० वर्ष तक अध्यापक रहे। संस्था के फर्ग्यूसन कालेज में प्राध्यापक भी रहे और संस्था का मंत्रीपद भी कुछ दिनों तक उन्होंने संभाला। अपने जीवन में इस संस्था की उन्नति के लिए उन्होंने मदैव प्रयास किया।

गोपाल कृष्ण गोखले के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश की कहानी भी कम रोचक नहीं है। सन् १८८७ ईस्वी में डेक्कन एज्युकेशन सोसाइटी का उत्सव हो रहा था। अध्यापक गोखले विद्यार्थियों पर अनुशासन रखने के कार्य में संलग्न थे। संयोग से प्रसिद्ध हाईकोर्ट जस्टिस श्री महादेव गोविंद रानाडे बिना निमन्त्रणपत्र के वहाँ चले आए। अनुशासन के पक्ष के गोखले ने रानाडे को प्रवेश करने से रोक दिया और इस प्रकार वे उस व्यक्ति के सम्पर्क में आए जिनने बाद में उनके जीवन की धारा को एक नई दिशा प्रदान की और जिसे उन्होंने अपना गुरु माना। रानाडे से परिचय हो जाने के बाद ही वे

प्रकाश में आए। रानाडे द्वारा स्थापित सार्वजनिक सभा का मंत्री गोखले को ही चुना गया था। अगले वर्ष रानाडे उन्हें बम्बई में राष्ट्रीय महासभा (कॉंग्रेस) के अधिवेशन में ले गए और जनता ने बम्बई के उस महान् अधिवेशन में अपने दो भावी महान् नेताओं का सर्वप्रथम भाषण सुना। इसी सभा में श्री गोपाल कृष्ण गोखले और श्री लोकमान्य तिलक ने अपने सब से पहले भाषण दिए थे।

इसके पश्चात् गोखले ने कॉंग्रेस में महत्वपूर्ण भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। प्राथमिक शिक्षण की दिशा में भी उन्होंने उल्लेखनीय काम किया। कॉंग्रेस की १८९२ की इलाहाबाद की सभा में जन-सेवा विषय पर उनका महत्वपूर्ण भाषण हुआ था। सन् १८९३ में वे बम्बई कॉंग्रेस के महामन्त्री रहे और फिर २ वर्ष बाद कॉंग्रेस की महासमिति के संयुक्त मंत्री भी रहे।

सन् १८९६ में उनकी भेंट महात्मा गाँधी से हुई। दक्षिण आफ्रिका में गाँधी जी द्वारा परिचालित आन्दोलन में उन्होंने बड़ी दिलचस्पी ली थी। देश के कार्य में अनेकों बार वे लन्दन भी गए। सन् १८९६ ईस्वी में वे बम्बई धारा सभा के सदस्य निर्वाचित हुए और कुछ समय पश्चात् बम्बई के सर फिरोजशाह मेहता के अस्वस्थता के कारण बम्बई प्रान्त की ओर से वे धारा सभा में उनके स्थान पर चुने गए।

धारा सभा में पहुँच कर श्री गोखले ने देश की महत्वपूर्ण सेवा की। उनके भाषण सदैव सामयिक और उपयुक्त हुआ करते थे। सरकारी आर्थिक नीति की आलोचना, करों की अधिकता का विरोध, नमक कर और अन्य सरकारी कार्यों की आलोचना वे सदैव करते रहे। उनके बजट भाषण को सुनने के लिए सदैव भीड़ लगा करती थी। उनके प्रतिस्पर्धी तक उनकी तारीफ़ किया करते थे। तत्कालीन वायसरॉय लार्ड कर्जन ने उन्हें अपना समवयस्क एवं सर्वाधिक बलवान प्रतिस्पर्धी स्वीकार किया था।

सन् १९०५ में राष्ट्रीय महासभा (कॉंग्रेस के बनारस अधिवेशन में उन्होंने सभापति का आसन संभाला। अध्यक्ष-पद से दिया गया उनका भाषण बड़ा प्रभावशाली एवं उपयुक्त रहा। बनारस अधिवेशन के बाद वे लन्दन गए जहाँ उन्होंने पचास दिनों में ४५ भाषण दिए। भाषण दे कर उन्होंने अपना दृष्टिकोण सरकार के सम्मुख

रखा। लार्ड मॉले में उनकी कई महत्वपूर्ण बातें हुई।

सन् १९०५ में उन्होंने अपने जीवन का सार्वधिक महत्वपूर्ण कार्य, सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी की रचना द्वारा संपन्न किया। उनकी यह संस्था इतनी लोकप्रिय हुई कि डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, महात्मा गांधी और पं० नेहरू जैसे लोग इसके सदस्य बनने के इच्छुक रहते थे।

आजीवन वे देश की स्वाधीनता के लिए प्रयत्न

करते रहे। सदैव जनकल्याण की ही भावना ले कर उन्होंने कार्य किया। यद्यपि वे नगरमदल के प्रमुख नेता थे, फिर भी समय समय पर उन्होंने उपयुक्त अवसर देख कर सरकार का विरोध भी किया और देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न किया। १९ फरवरी सन् १९१५ को उनका देहावसान देश की आजादी के लिए प्रयत्न करते हुए हुआ। वे हमारी स्मृति में सदैव के लिए अमर हैं।

उपरेनगंज,

जबलपुर

—मदन गोपाळ

रोरिच के चित्र

बहुत से व्यक्ति अपने अवकाश के समय को चित्रशाला या आर सप्रहाणना में व्यय करना पसन्द करते हैं। मास्को में एक चित्रशाला है जिसका नाम त्रेत्याकोव चित्रशाला है। कुछ समय हुआ इस चित्रशाला में रूस के प्रसिद्ध चित्रकार निकोलाई रोरिच के तूलिका-चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। निकोलाई रोरिच ने अपना अधिकांश जीवन भारतवर्ष में व्यतीत किया है। उन्होंने अपने चित्रों में रूस की श्रेष्ठता में चित्रकला की परम्पराओं और भारतवर्ष के अनन्त आकर्षक रंगों में सामंजस्य स्थापित किया है।

मास्को के निवासी रोरिच के चित्रों को घंटों तक अत्यन्त मुग्ध-भाव से देखते रहते हैं। उनके चित्रों के सम्बन्ध में मोटर कारखाने के एक श्रमिक ने निम्न विचार अभिव्यक्त किए हैं—
“भव्य भारत-भूमि ने रूसी चित्रकार रोरिच के सम्मुख अपनी अमूल्य आध्यात्मिक निधियों को पूर्ण रूप से प्रस्तुत कर दिया है। हम इन चित्रों को देखकर घंटों तक भाव-मुग्ध हो जाते हैं।”

—“मास्को न्यूज़”

गीता और गांधी जी

“गीता समस्त शास्त्रों का दोहन है”—इसने कहीं पढ़ा था कि “सारे उपनिषदों का निचोष उसके ७०० श्लोकों में आ जाता है। इसलिए मैंने निश्चय किया है कि कुछ न हो सके तो भी गीता का ज्ञान प्राप्त कर लूँ। आज गीता मेरे लिए केवल बाइबिल नहीं है, केवल कुरान नहीं है, मेरे लिए वह माता हो गई है। मुझे जन्म देने वाली माता तो चली गई पर संकट के समय गीता माता के पास जाना मैं सीख गया हूँ। मैंने देखा है कि जो कोई उस माता की शरण जाता है उसे ज्ञानामृत से वह तृप्त कर देती है।” गांधी जी के गीता पर विचारों को समझने के लिए यह उद्धरण एक सोपान है। उनकी गहन गम्भीर श्रद्धा का पता इसमें लगता है। वे निरङ्कुल तथा निष्कपट भाव से गीता की ओर देखते हैं। वहाँ पाण्डित्य नहीं है, बुद्धि की पखरता भी नहीं है। लोकमान्य के भाष्य के लिए श्रद्धा से उन्होंने लिखा है कि “तिलक महाराज के लिए यह गूढ़ ग्रन्थ था पर हमारे जैसे साधारण मनुष्य के लिए वह गूढ़ नहीं है।” लोकमान्य ने इस पर भाष्य लिख कर आचार्य परम्परा का निर्वाह किया था। यदि वे राजनैतिक आन्दोलन में नहीं रहते तो प्रस्थान-त्रयी क शेष दो ग्रन्थों पर भी उनके विचार मिलते (ब्रह्मसूत्र पर उनके कुछ टिप्पणियाँ प्राप्त हुई हैं)। यह परम्परा निश्चय ही बुद्धिवाद की प्रक्रिया है। लोकमान्य ने इसी प्रक्रिया का आश्रय लिया, उन्होंने अपनी भक्ति और श्रद्धा को इस विश्लेषण में नहीं आने दिया।

गांधी जी का दृष्टिकोण दूसरा था। उनके अनुसार गीता को समझने के लिए बुद्धिवाद नहीं बल्कि अव्यभिचारिणी भक्ति चाहिए... गीता निराश होने वाले को पुरुषार्थ सिखाती है, आत्मस्य और व्यभिचार का त्याग बताती है... मनुष्य को केवल प्रयत्न करने का अधिकार है, फल पर कोई अधिकार नहीं” (गीता माता पृ० ५३०) कर्मयोग शास्त्र में लोकमान्य का निष्कर्ष यही तो है : “कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन” पर वे भक्ति को प्रथम स्थान नहीं देते। उनके मत में कर्म, भक्ति और ज्ञान गीता के इन तीन वैचारिक आधार

स्तम्भों में कर्म ही प्रमुख है। यहाँ इन शब्दों का संक्षेप में विवेचन करना उचित होगा। कर्म का अर्थ लोकमान्य ने यहाँ जीवन से लिया है। वे प्रारब्ध कर्म अथवा शास्त्रोक्त या वेदोक्त कर्म को उतना महत्व नहीं देते। जीवन ही कर्म का पर्याय बन जाता है। यह सच है कि इन तीनों का लक्ष्य मोक्ष अथवा मुक्ति है। यह तीनों तो पन्थ ही हैं या यों कहें कि एक ही रास्ते को अलग-अलग देखने के ढंग हैं पर होता यह है कि इन तीनों के अनुयायियों के जीवन में इनका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कर्म को प्रधानता देने वाले का जीवन साधारणतया बाह्य जगत् में व्यावहारिक रहेगा। वह अनवरत लोक-संप्रद में लगा रहेगा। उसकी दृष्टि में कार्य का यही मुख्य मार्ग रहेगा।

भक्त लोकसंप्रद करता रहेगा। पर वह कार्यों का कर्तृत्व प्रहण नहीं करेगा। ज्ञानी लोकसंप्रद करेगा और कर्तृत्व का भार भी लेगा। इस तथ्य को पुनः दोहराना उचित होगा कि यह केवल अभिव्यक्ति के ढंग का भेद है।

ब्रह्म शुद्ध, नित्य, अनिवचनीय, ऐसी जो सत्ता है उसी का यह प्रकाश वैचन्य है। लोकमान्य का उद्देश्य केवल उपनिषत्, सामाजिक राष्ट्रीय कर्म करने का नहीं था। वह उद्देश्य था कर्मयोग द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार करने का। शंकराचार्य और लोकमान्य का भेद लक्ष्य के सम्बन्ध में न हो कर मार्ग के सम्बन्ध में था। दोनों अद्वैतवादी थे।

गांधी जी के अनुसार कर्मों का कर्तृत्व प्रहण करने के स्थान उस प्रभु की इच्छा पर छोड़ना प्रियस्कर होगा।

गांधी जी के अध्यात्म का पारंपरिक विश्लेषण भारत के महान् तत्व वेत्ता पुण्य स्व० डा० रानाडे ने गुजरात विद्या सभा के व्याख्यानों में किया है। उनके ‘गांधी और गीता’ विषय पर दिए गए प्रवचन अभी उपलब्ध नहीं हुए हैं। वे महात्मा जी के प्रबल संस्कारों में जैन आदर्श, भगवत्पाद वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैती वैष्णववाद तथा गुजरात के संतो

की भक्ति का प्रभाव मानते हैं।

महात्मा जी के आध्यात्मिक विचारों को उन्होंने पाँच भागों में विभक्त किया है १. ईश्वर की धारणा २. नैतिक मूल्यों का आग्रह ३. जीवन यात्रा का क्रम ४. महात्मा जी का विषाद तथा ५. साक्षात्कार की झलकें। (द्रष्टव्य आध्यात्मिक जीवन: रानाडे पृ० ५) यह देखना इसलिये परम आवश्यक है क्योंकि केवल अनासक्ति कह देने से दर्शन की भूमिका स्पष्ट नहीं होती। रोमा रोला न कहा है “गांधी जी का दर्शन दो तत्वों से मिल कर बना है। धार्मिक धरातल जो विशाल और दृढ़ है और सामाजिक कार्य जिनकी रचना वे लोकमत और वास्तविक परिस्थितियों को अनुकूल बना कर इस सनातन धरातल पर करते हैं।” (द्रष्टव्य: महात्मा गांधी—रोला) स्व० डा० रानाडे के अनुसार तो गांधी जी के सामाजिक जीवन तथा धार्मिक जीवन में एकरूपता रही है। वही स्थिति लोकमान्य की थी पर जीवन के तन्त्रों की भिन्नता ने विचारों की अभिव्यक्ति में प्रभाव डाला है।

लोकमान्य का कर्मयोग भक्ति से कचराता है। यहाँ भक्ति के स्थूल रूप को ही लेना होगा। वैसे ही ज्ञान का ब्रह्म ज्ञान का अर्थ मानते हुए भी लोकमान्य ज्ञान प्राप्त करने की शंकराचार्य की पद्धति को जिसे कर्मसंन्यास कहा जाता है नहीं मानते।

गांधी जी भी आचार्य-पद्धति के कर्म संन्यास को नहीं मानते। वे तो भक्त की स्थूल पद्धतियों का भी अस्वीकार नहीं करते। स्व० महादेव भाई की गीता की पुस्तक में हम गांधी जी के आध्यात्मिक आधारों का विवेचन नहीं पाते हैं। लोकमान्य के सम्बन्ध में वे कुछ ही विचार व्यक्त कर रह जाते हैं (द्रष्टव्य: गार्ग्येय आश्रम सेल्फलेस एक्शन पृ० १११) उनकी आध्यात्मिक भूमिका के सम्बन्ध में इतना भर कहना होगा कि वे शंकराचार्य के अद्वैतवादी मत को नहीं ह। पर वे द्वैत को भी नहीं मानते और न वे जैनियों के स्यादवाद को मानते हैं। किनासकी आश्रम महात्मा गांधी पृष्ठ २५)

स्व० डॉ० रानाडे का मत के अनुसार हम देखते हैं कि गांधी जी भक्त के नाते गीता को देखते हैं। उनकी अनासक्ति भक्ति की सहज वृत्ति है। वे गीता के रंग में डूबे रहते हैं। उन्हें उनका प्रिय चर्खा गीता में दिखलाई दिया एवं प्रवर्तित चक्रं—यह चक्र

धूमता रहता है। और वे आगे जाकर कहते हैं: “अहिंसा यह भौतिक विचार है और अनासक्ति आध्यात्मिक विचार है। भक्ति और ज्ञान यह अनासक्ति और मंडल के प्रह हैं।”

अनासक्ति योग का विचार करते समय हमें यह देखना होगा कि गांधी जी गीता को रूपक कथा मानते हैं।

यहाँ यह स्पष्टतया कहना होगा कि गीता को रूपक मान लेने से गीता का देशकालातीत स्वरूप और भी भव्य हो जाता है पर उसमें बहुत अधिक खींचतान करनी होती है।

आनन्द वर्धन ने गांधी जी के पूर्व इस बात का प्रथम उल्लेख किया था।

यहाँ बहुत से टीकाकारों का मत गांधी जी के विरोध में है और हमें गीता को पूरे रूपक का अंश न मान कर उसके सनातन रूपक स्वरूप को मान लेना होगा। यदि अर्जुन हमारा प्रतिनिधित्व नहीं करता है तो यह कहना होगा कि गीता का हमारे लिए बहुत कम महत्व रह जाता है।

अनासक्ति के आध्यात्मिक हिमालय से यज्ञ और निष्काम वृत्ति की गंगा यमुना गांधी दर्शन के क्षेत्र का सिंचन करती है।

उपनिषद् का यह सूत्र ध्यान में रखने योग्य है।

“आप्तकामः सर्वकामः निष्काम आत्मकामः”

यज्ञ वृत्ति भौतिक तथा स्थूल है। इसी यज्ञ में शरीर श्रम का महत्व है। शरीरश्रम यही यज्ञ मानव जीवन में प्रतीक रूप से है।

निष्काम वृत्ति यह मानसिक स्तर में सम्बन्धित है।

गांधी जी भक्त थे। उनके लिए प्रार्थना एक आवश्यक साधना थी। उन्हीं के शब्दों में “मे प्रार्थना के बगैर जीवित नहीं रह सकता” उनकी सायंकालीन प्रार्थना के समय ही उनका देहोत्सर्ग हुआ—यह अध्यात्म की दृष्टि से महत्व की घटना है।

भक्त की आँखों से ही उन्होंने हरि को दुःखितो में देखा। उनका नारायण से भी दूर था पर दरिद्रों में वह अधिक दिखता था। “वैष्णव जन तो तेरो कहिये जे पीर पराई जाये रे” वाले उनके अत्यन्त प्रिय भजन

में वर्णित जीवन पद्धति को वे गीतोक्त जीवन पद्धति ही मानते थे।

जीवन के सम्बन्ध में यहाँ यह कहना उचित होगा कि उसे हमें समग्र रूप से ही देखना चाहिए। “एक वस्तु का ध्यान करना, दूसरी चीज बोलना और तीसरी को सुनना इसको व्यभिचार कहते हैं।” (गीता माता)।

साधारणतया यह माना जाता है कि लोकमान्य ने इस द्विविध व्यावहारिकता को माना है। उनका आधार ‘मनुस्मृति’ है। इसी से हिंसा का जन्म होता है और वहाँ भी मनु के आधार पर लोकमान्य ने कुछ स्थानों पर हिंसा को आवश्यक माना है।

गांधी जी की अनात्मिक में हिंसा का होना कठिन है। हिंसा-अहिंसा यह कर्मफल से जानी जा सकती है। जब हम कर्मफल का ही विचार छोड़ देते हैं फिर हिंसा अहिंसा का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। मरचे अनात्मक पुरुष और सच्चे कर्मयोगी में कोई भेद नहीं है। लोकमान्य के कर्मयोग की आज में भूटे दोहरे जीवन का समर्थन करना पलत है। यदि मैं साक्षात्कारी पुरुषों की वाणी में कहूँ तो कहना होगा कि भूत और भविष्य का विचार अनात्मिक तथा कर्म योग दोनों के क्षेत्रों से परे है।

यह अनात्मक योगी “अभयं मत्संशुद्धिर्ज्ञानयोग्यव्यवस्थितिः” (गीता १६-१) तथा सूत्र के “मेत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा और भावनातत्त्वित्वप्रसादनम् का अनुकरण करता है। भक्त के लक्षण में भी तो मेत्री, अनर्हंकार करुणा, सम-बु-ख-सुख, ज्ञमा, धैर्य, सहनशीलता और अतोष आदि है। उन्होंने कहा है। “वही भक्त है जो किसी से ईर्ष्या नहीं करता; जो दया का स्रोत है जिसमें

अहंकार नहीं है, जो स्वार्थहीन है, जिसके लिए सुख दुःख, शीत, ताप समान हैं, जो सदा क्षमा करता है, सन्तुष्ट रहता है, जिसके निश्चय दृढ़ होते हैं जिसने अपनी आत्मा और मन को ईश्वर को समर्पण कर दिया है; जो किसी को भयभीत नहीं करता; जो अनर्भक है; जो शुद्ध है; जो कार्य रत होते हुए भी नम्र प्रभावित नहीं होते और जो फल का परित्याग करता है। फल चाहे अच्छा हो या बुरा, जिसके लिए शत्रु और मित्र एक से हैं, जो आदर अनादर से रिक्त हैं जो प्रशंसा से फूल नहीं उठता जो अपनी निन्दा सुन कर दुःखी नहीं होता जिसे शान्ति और एकान्त प्रिय है और जिसके तर्क अनुशामनपूर्ण हैं।” (गीता माता)

स्थितप्रज्ञ के सम्बन्ध में द्वितीय अध्याय में जो श्लोक है वह गांधी जी सायं की प्रार्थना का संग था। संक्षेप में सार यह है :

देवी और आसुरी पशुतियों के इस कुक्षेत्र में ही हमें मखिदानन्द की प्राप्ति करनी होगी।

जीवन में अपूर्णता है। मानव सतत प्रयत्नशील है पर इन प्रयत्नों का परस्मा जाना नितान्त आवश्यक है।

गांधी जी का जीवन एक सत्य का प्रयोग था। गीता उनका अध्यात्मिक मन्दर्म ग्रन्थ ही नहीं वरन उसमें उन्हें परम करुणामयी माता के दर्शन होते थे।

आचार्य शंकर ने भाव-विह्वल होकर गाया है “कुपुत्रो जायेत कच्चिदपि कुमाता न भवति” पर यहाँ तो गीता माता के महान् सुपुत्र की माधना है। स्थितप्रज्ञता के ब्रह्म-निर्वाण की ज्योति में वह पावन प्रसन्न, माधना की ज्योति एक रूप ढा गई यही महात्मा जी के गीतार्थ का प्रतीक रूप है।

बडा रावला,
जूनी, इन्दौर

—नि० छ० जमींदार

“मेरा जीवन ३० वर्ष का एक चमत्कार है। यदि मैं इस का वर्णन करूँ तो यह इतिहास नहीं-एक काव्य होगा और एक काल्पनिक कहानी के समान प्रतीत होगा।

—सर थोमस ब्राउन

आन्ध्र के संगीताचार्य, महान् सन्त कवि : त्यागराज

दक्षिण के संगीत-प्रेमियों के लिए तीन संगीतज्ञ त्रिमूर्ति की तरह पूजनीय हैं : १. त्यागराज २. सुजु-स्वामी दीक्षितुलु और ३. श्यामा शास्त्री ।

इन तीनों में त्यागराज का स्थान सर्वोपरि है । त्यागराज ने जितने गीतों की रचना की थी, वे सब भक्ति-विह्वलना में कहे गए थे । उन्हें अपनी पांडित्य प्रदर्शन का उतना मोह नहीं था, जितना कि अपना अन्तःकरण खोल कर रख देने का । वे श्रीरामचन्द्र जी के अनन्य भक्त थे और उनकी इसी भक्ति ने त्यागराज को दक्षिण का एक महान् संगीतज्ञ और महान् भक्त कवि बना दिया ।

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने—‘तू दयालु दीन हो, तू दानि हो भखारी’, ‘ब्रह्म तू हौं जीव तू ठाकुर हो चरो’ कह कर श्री रामचन्द्र की स्तुति की है, ठीक नसी प्रकार त्यागराज ने भी श्री रामचन्द्र जी की वन्दना की है ।

त्यागराज के जितने भी पद हैं, वे सब फुटकर हैं । तुलसी या सूर की तरह उन्होंने अपने इष्टदेव का माहात्म्य कोई काव्य-ग्रंथ लिख कर नहीं गाया ।

हमें त्यागराज में काव्य-शास्त्र का वह ज्ञान दिखाई नहीं देता जो कि तुलसीदास में दिखाई पड़ता है । हाँ, भक्ति एवं दार्शनिक मत-मतान्तरों की विवेचना त्यागराज के पदों में अवश्य मिलती है ।

त्यागराज ने हजारों की सख्या में गीत रचे थे, पर वे सब उपलब्ध नहीं हैं । जितने पद अब उपलब्ध हैं, उनके अध्ययन से यही ज्ञात होता है कि यद्यपि त्यागराज ने भाव-वभोर हो कर अपने गीतों की रचना की थी, फिर भी उनके पदों में ऐसी सरल शब्दावली का प्रयोग मिलता है, जिनके सहारे आपने भक्ति, ईश्वर, जीव और जगत् सम्बन्धी अनेक गूढ़ भावनाओं का सुन्दर चित्रण उपस्थित किया है । उनके गीतों में ऐसे पद भी विद्यमान हैं, जिनका गूढ़ार्थ समझना कुछ कठिन-सा हो जाता है, पर ऐसे पदों में निहित गूढ़ार्थ को बिना समझे भी हम उन गीतों का रसास्वादन कर सकते हैं; क्योंकि उनके प्रत्येक पद में गेयात्मकता कूट-

कूट कर भरी हुई है । त्यागराज स्वयं गायक थे । स्वर प्राधान्य के उपयुक्त पद्यों में रचना होने से संगीतज्ञों के लिए तो उनके पद एक निधि के समान हैं ।

त्यागराज के समस्त पद मुक्तक और अपने में पूर्ण हैं । प्रत्येक पद में कवि आत्म निवेदन करता है; कभी अपने को उद्धार करने की प्रार्थना करता है तो कभी अपनी विह्वलता बताता है । निम्न पदों में कवि भगवान् से प्रार्थना करता है कि वह नसके मत्सर रूपी पदों को हटाने में सहायता करे, जिसके कारण वह बहुत दुःखी है :

पल्लवी : तेर तीयगरादा ना लोनि ॥ तेर ॥

अनुपल्लवी : तिरुपति वेकट रमणा

मत्सरमुनु ना लोनि ॥ तेर ॥

चरणम् : परम पुरुष धर्मादि मोक्षमुलनु

पारदोलुचुनादि ना लोनि ॥ तेर ॥

मत्सरमाकलि गोनि गालमुचे

मग्नमैन रीति जुनादि ॥ तेर ॥

.....

वेगमे नीमतमु ननुसरिंचि

त्यागराजनुत मद मत्सरमुनु ॥ तेर ॥

एक दूसरे पद में वे कहते हैं—‘हे श्री रामचन्द्र !

तुम्हें मुझ पर दया क्यों नहीं आती ? इस संसार को भुले हुए क्यों हो ? यहाँ के कोलाहल से क्या तुम रुष्ट हो ? पर मैं तो तुम्हारा स्मरण करते करते शुक हो गया हूँ; तुम्हीं-मेरे रक्तक हो । मैं तुम्हारे अधीन हूँ, अब देर न करो, मेरा उद्धार कर दो ।’ वे भगवान् से आत्म निवेदन करते हैं और अपनी दीन दशा का चित्रण करते हैं :

पल्लवी : एन्दुकु दय रादुरा श्री रामचन्द्रा !

नीके (न्दुकु...)

अनुपल्लवी : सन्दडियनि मरचितिवो ? इन्दु लेवो

नीके (न्दुकु...)

चरणम् : जागेल ? इदि समयमु गादु, चेसिन नीवे गति,

पल्लवव्या श्री रामचन्द्रा

नीवेगानि दरे लेदुरा, वीन शरण्या !

त्यागराज विनुत ! तारक चरिता !

इसका भाव तुलसी के 'केहू भाँति कृपा सिन्धु मेरी ओर हेरिए' से 'रामचन्द्र ! मोहि आपनो सोच है अरु नाहीं ।' से मिलता-जुलता है ।

निम्नपद में त्यागराज के आध्यात्मिक विचारों का अचछा दिग्दर्शन हुआ है :

पल्लवी : तत्वमेरुग तरमा

अनुपल्लवी : 'तत्वमसि' यनु वाक्यार्थमु

रामा ! नीवनु पार ॥ तत्व ॥

चैरगम् : तामस-राजस गुणमुल तन्नु कोळ्ळु पो दया

राम भक्तुडैन त्यागराज विनुत

वेद शास्त्र ॥ तत्व ॥

त्यागराज इस पद में श्रीरामचन्द्र जी से कहते हैं कि बिना तुम्हारी कृपा के न तो मोह ही दूर होता है और न मन के विकार ही । तुलसीदास ने अपने पद—'जो निज मन परिहरै बिकारा' में इसी भावना को व्यक्त किया है ।

जिस प्रकार हिन्दी में तुलसी, मीरा आदि के गीत स्वर साधना के उपयुक्त हैं, उसी प्रकार त्यागराज के भी ममस्त पदों में एक संगीत लहरी प्रवाहित हुई है । त्यागराज का प्रत्येक गीत तीन भागों में विभक्त रहता है । पहले 'पल्लवी' आती है, फिर 'अनुपल्लवी' और अन्त में 'चरगम्' आता है । गाते समय पहले पल्लवी, अनुपल्लवी, फिर पल्लवी । 'चरगम्' के बाद यदा दूसरे शब्दों में अनुपल्लवी दोहराई जाती है । त्यागराज ने अपने प्रत्येक पद में किसी न किसी राग का प्रयोग किया है । यह भी कहा जाता है कि आपने कई नए रागों की सृष्टि की थी ।

तुलसीदास ने जिस प्रकार रामभक्त होते हुए भी अन्य देवी-देवताओं की स्तुति 'विनयपत्रिका' में की है, ठीक उसी प्रकार त्यागराज ने भी अन्य देवी-देवताओं की वन्दना में कई पद रचे थे :

१. शिवजी की वन्दना में :

"शंभो महादेव—शंकर गिरिजा रमणा
शंभो महादेव...भक्ति देहि"

२. पार्वती जी की वन्दना में :

"शिवे पाहिमाबिके श्रित फलदायके..."

३. विघ्नेश्वर को लेकर :

"गिरिराज सुता, तनया, मदया..."

४. श्री कृष्ण जी की स्तुति में :

"प्राणनाथ बिरान ब्रोववे..."

५. तिरुपति वैकटेश्वर जी की स्तुति में :

"तेर तीयगरादा नालोनि..."

६. कावेरी नदी की स्तुति में :

"सारि वेडल्लिन यी कावेरी जूडवे..."

फुट कर गीतों के साथ आपने दो—एक संगीतात्मक प्रबन्ध-काव्यों का भी सृजन किया था । 'प्रह्लाद भक्त विजययु' ऐसा ही एक काव्य है, जिसमें त्यागराज ने प्रह्लाद की भक्ति का विशद रूप से वर्णन किया है ।

त्यागराज की शिष्य परम्परा असंख्यक-सी है । त्यागराज के जितने शिष्य तमिलनाडु में हैं, उतने आन्ध्र में नहीं हैं, यद्यपि त्यागराज आन्ध्र के थे और उन्होंने अपने सारे पद तेलुगु में लिखे थे । इस कथन में भी कोई अत्युक्ति नहीं है कि त्यागराज के गीतों को आज तक अनुकरण बनाए रखने में उन्हीं संगीत प्रेमी तमिलनाडु के मानसियों का बड़ा हाथ रहा है । त्यागराज ने कर्नाटक शास्त्रीय संगीत की जो नींव दक्षिण में डाली, वह आज एक विशाल रूप धारण कर चुकी है ।

दक्षिण के इस संगीतज्ञ एवं कवि के दादा-परदादा आन्ध्र निवासी थे, जो तंजाऊर के समीपवर्ती गाँव तिरुवय्यूर जाकर बस गए थे । फिर उसके बाद—तिरुवय्यूर तमिलनाडु का एक बहुत बड़ा पुराय क्षेत्र है ।

त्यागराज के पिता का नाम रामब्रह्मम् था और माता का सीताम्बा । आपके तीन पुत्र थे । तीनों में त्यागराज छोटे थे । राम ब्रह्मम् श्रीरामचन्द्र जी के बड़े भक्त थे और संस्कृत भाषा के भी अच्छे पण्डित थे । सीतांब बचपन में त्यागराज को पुरन्दरदास के कीर्तन जयदेव के अष्टपद, रामदास के भजन गायक सुनाया करती र्थ

और उसका भी कुछ प्रभाव त्यागराज पर पड़ा था।

कहा जाता है कि त्यागराज को रामकृष्णानन्द नाम के किसी स्वामी ने श्रीराम षडचरी मन्त्र का उपदेश दिया था और कहा था कि यदि उसका जप ६६ करोड़ बार किया जाए तो श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन हो जाएंगे।

त्यागराज पंचायतन की पूजा करते हुए इतने तल्लीन हो जाया करते थे कि उनके मुँह से अपने आप शब्द निकलते जाते थे। फिर अपने को झूल कर गाने में मस्त हो जाते थे। त्यागराज के माता-पिता को यह देख बहुत आश्चर्य हुआ। उन पदों को छिपिबद्ध करके जब रामब्रह्मम् ने पण्डितों को दिखाया तो वे भी चकित रह गए। उसके बाद ही त्यागराज को तंजाऊर महाराजा के दरबारी कवि एवं संगीतज्ञ श्री शोठि वेंकटरमणय्या का शिष्य बनाया गया। त्यागराज ने एक-निष्ठ होकर संगीत कला का अभ्यास किया और उसमें प्रवीणता प्राप्त की।

कहा जाता है कि महर्षि नारद एक तपस्वी के त्रेय में आकर 'स्वर्णार्शव' नामक ग्रन्थ त्यागराज को दे गए, जिसमें संगीत के सम्बन्ध में विविध विषय विद्यमान थे। इस घटना के पश्चात् त्यागराज ने निम्न पद विजय और राग में रचा था—'वर नारद नारायण !'

त्यागराज को अपने पिता से विरासत में पंचायतन मूर्ति प्राप्त हुई थी, जिसे वे अपने प्राणों से भी अधिक मानते थे। त्यागराज की इस भगवद्भक्ति को उनके भाई नहीं मानते थे। उन्होंने पंचायतन मूर्ति को कावेरी नदी में फेंकवा दिया। त्यागराज इतने दुःखित हुए कि उन्होंने खाना-पीना तक छोड़ दिया था। कहा जाता है कि स्वप्न में उन्हें श्री रामचन्द्र जी दिखाई दिए थे और उन्होंने यह कहा था कि मूर्ति कावेरी नदी में अमुक स्थान पर है। त्यागराज को सचमुच वह मूर्ति वहीं मिल गई। उस समय की उनकी भक्ति विह्वलता का परिचय हमें निम्न गीत से प्राप्त होता है :

“कनुगोटिनि श्रीरामुनि नेडु...”

यह गीत राग बिलहरि में गाया गया था।

जब त्यागराज की ख्याति चारों दिशाओं में

व्याप्त हो चुकी तब तंजाऊर के महाराजा ने कन-कामिपेक के निमित्त उन्हें बुलावा भेजा पर वे नहीं गए। उन्हें राजाश्रय पसन्द नहीं था, यद्यपि इनके समकालीन कवियों ने इसे पसन्द किया था। निम्नपद उस समय का बनाया हुआ था : 'निधि चाल सुखमा, रामुनि सशिधि सेव सुखमा'। इसका आलाप राग कल्याणी में किया गया था।

त्यागराज के दो विवाह हुए थे जब द्वितीय पत्नी का भी स्वर्गवास हो गया तो वे पूरे त्यागी बन गए। उनके अन्तिम दिनों के सम्बन्ध में, कहा जाता है कि एक दिन स्वप्न में श्री रामचन्द्र जी ने आ कर उन्हें यह बताया था कि पाँच दिन के अन्दर मैं तुम्हें अपने में समाविष्ट कर लूँगा।

जब पाँचवा दिन व्यतीत होने को आया तो त्यागराज ने अपने शिष्यों को बताया कि आज एक चमत्कार होनेवाला है। उस दिन उन्होंने अपना अन्तिम पद यो गाया था :

“श्याम सुन्दरांग सकल शक्ति यु नीवेरा”

जैसे ही यह गीत समाप्त हुआ, उनका कपाल फट गया और उसमें से एक ज्योति बहिर्गित हुई, जो श्रीरामचन्द्र जी की मूर्ति में समाविष्ट हो गई।

यह भी कहा जाता है कि इस घटना के पश्चात् त्यागराज ने अपने एक शिष्य को स्वप्न में आकर यह कहा था कि उनके गीतों का प्रचार ५० वर्ष तक न किया जाए।

अंग्रेजी सन् के अनुसार जनवरी ६, १८४७ को ८८ वर्ष की आयु में त्यागराज की सिद्धि की प्राप्ति हुई। त्यागराज के योग साधन की इस अलौकिक फल-प्राप्ति के ठीक ५० वर्ष की समाप्ति के अनन्तर प्रति वर्ष त्यागराज जयन्ती तीन दिन के लिए तिरुवय्यूर में मनाई जाती रही है। इस अवसर पर संगीत समारोहों का आयोजन होता है और दक्षिण के उच्च गायक और विद्वान् वहाँ उपस्थित होकर त्यागराज को अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हैं। इस वर्ष भी त्यागराज की ११२ वीं वार्षिक आराधना तिरुवय्यूर में बड़े धूमधाम से मनाई गई थी।

नबोदय, तेलुगु पाक्षिक,

पो० बॉ० नं० २३६, हैदराबाद

—दण्डसूक्ति महीधर



कला-चर्चा

कलाकार मुदिगिलियानि

बिखरे बाल, गले में मफलर, उदास आँखें, मोहक मुद्रा—बीसवीं शताब्दी के सिद्धहस्त कलाकार अभेदे मुदिगिलियानि का यही यथार्थ चित्र था।

भीषण दरिद्रता ही उसकी एकमात्र सम्पत्ति थी। बिगड़ा स्वास्थ्य, व्यसनाधीन शरीर, मनमौजी स्वभाव; घोर निराशा तथा वेदना ने उसे अत्यन्त भावुक बना दिया था। उसकी अति संवेदनाकुल अिन्दगी चित्रकला-जगत् की एक कसूण आख्यायिका बन गई।

उसकी मौत के चालीस साल बाद किसी फ्रेंच सिनेमा कम्पनी ने उसके जीवन की दर्दभरी दास्तान को फ़िल्म का रूप दे दिया। उसकी जारज लक्ष्मी ने स्वयं उसकी आत्मकथा लिखी। यूरोप तथा अमरीका में उसके चित्रों की प्रदर्शिनियाँ हुईं। अमी-अमी उसका एक चित्र ५०००० पौण्ड में बिका।

मुदिगिलियानि का प्राथमिक जीवन ही कुछ अच्छा रहा। इटली के लोगहार्न के यहूदी किसान परिवार में, सन् १८८४ में, उसका जन्म हुआ। अपनी आयु के चौदह साल में उसने कला, साहित्य और तत्त्वज्ञान को आत्मसात् कर लिया। इसके बाद कला का सर्वांगीण अध्ययन करने के लिए वह कला-पाठशाला में भर्ती हुआ। उसने अपना जीवन कला की सेवा में समर्पित कर दिया।

सन् १९०६ में जब वह पेरिस पहुँचा, तब वह इक्कीस साल का एक शर्माला युवक था। मान्तमात्रे में उसने एक स्टूडियो किराए पर लिया। नया मज़मल का सृष्ट पढ़न कर वह एकेडेमिक आर्ट स्कूल में गया और उपस्थित-रजिस्टर में उसने अपने दस्तखत कर दिए। प्रति दिन के वर्गों की उपेक्षा कर वह अपने ही स्टूडियो में रह कर दिन-रात पेन्टिंग और स्केचिंग बनाने में व्यस्त रहा। साथ-साथ वह शिल्पकारी के बेजोड़ नमूने बना कर पेरिस के कला-जगत् में हलचल मचाने लगा। उसने मूर्तिकला की अपनी मौखिक शैली को जन्म दिया, जिसमें इटली के मध्ययुगीन कला की तथा अफ्रीकन

प्राथमिक मूर्तिकला की प्रेरणाएँ स्पष्ट निहित थीं।

धन उसके चरणों का दास बनने लगा, तब एकाएक उसके जीवन में एक नया मोड़ आया। वह एक जिप्सी नारी के साथ होटलों में खाने-पीने लगा। उसका खर्च बढ़ गया और वनवाम, ब्रशेस तथा रंग खरीदने के लिए उसे मुहताज होना पड़ा और कमी-कमी तो रोटी के भी लाले पड़ने लगे।

वह गरीबी से तंग आकर शराब पीने लगा। शराब का नशा पूरा करने के लिए बगल में चित्र दबाए, वह एक केंफ़ से दूसरे केंफ़ तक पैदल मारा-मारा भटकता रहा। उस अवस्था में वह अपना चित्र केवल पॉच फ्रैंक में बेच देता। लउजा अब उसे नहीं रही थी। शराबखानों में जाकर, नशे में उसने अपने बहुत-से बढ़िया-से-बढ़िया चित्र बर्बाद किए; शराब की दो-चार घूंटों के बदले में अपने बेहतरीन चित्र बेच दिए।

उसके जीवन का अधिकांश समय इन्हीं अभाव-मस्त षडियों में गुजरा। निर्धनता फ़ाकाकशी के संधर्ष-शील दिनों में उसने अपने इर्द-गिर्द रहने वाले कलाकारों, विकेताओं, कवियों तथा केफ़े में काम करनेवाली महिलाओं के चित्र बनाए। मान्तमात्रे तथा मान्तपारना के मदिरालय में आनेवाले प्रायः सभी मदिरा के भक्तों को उसने ज़बर्दस्ती अपना मॉडल बनाया। मकान मालिक को नियमित किराया न देने की मजबूरी से वह बार-बार गन्दी बस्ती के गन्दे मकान को बदलता रहा।

मुदिगिलियानि को जहाँ कहीं मॉडल मिल जाए, वहीं वह अपना केनवास लगा कर पेन्टिंग करने लगता। फिर वह इस बात की जरा भी चिन्ता न करता कि वह कोई जनानखाना है, तलघर है, फुटपाथ का किनारा है या आम चौराहा है।

एक हाथ में कमी न छुटनेवाली शराब की बोतल, जिसम का एक-एक अंग बुखार में तपा हुआ, आँखें खुमारी में सुखे, माथा फट रहा है, फिर भी वह

घरटों बेहिसाब पेन्टिंग करता रहा। वह कभी अधूरा काम नहीं छोड़ता था। उसे आनेवाले कल पर विश्वास नहीं था। अल्पावधि में ही उसने विषय की मनःस्थिति और पद्धति चित्रित करने की अपूर्व क्षमता हासिल कर ली थी। उसने सदा अपनी निजी शैली को सँवारा-निखारा। बादामी अभ्रखुली आँखें, लम्बी नाक, पाइप जैस गले पर अगड़ाकृति सिर, आदि पोर्ट्रेट-चित्रण उसकी विशेषता बन गई थी।

उसके जीवन में जितनी नारियाँ आईं, उनमें से दो का प्रभाव उसके जीवन पर स्थायी रहा। पहली महिला इंग्लैण्ड की प्रसिद्ध कवयित्री थी—बीट्रीस हेस्टिंग्स। सन् १९१४ में दोनों की मुलाकात हुई थी। मुदिगिलियानि ने उसक सम्पर्क में दो वर्ष बिताए। उसने दस बार उसका पोर्ट्रेट पेंट किया और हजारों स्कैच बना काले थे। नारी की समीपता पा कर उसकी कला उत्तरोत्तर ठोम तथा गहरी बनती जा रही थी। परन्तु बीट्रीस के साथ भी वह अधिक दिनों तक नहीं रह सका और उसने उसे छोड़ दिया।

एक साल के एकांतवास के बाद उसकी जीन नामक उन्नीस वर्षीय कला प्रेमी युवती से प्रिन्सेटन कॉलेज में, सन् १९१७ में भेंट हुई। प्रथम दृष्टिपात में ही मुदिगिलियानि ने जीन को अपनी अभिन्न सहचरी बना लिया। मुदिगिलियानि के दोस्तों ने साचा था कि अब इस महान् कलाकार के जीवन में पारिवारिक जीवन का सुख तथा स्थैर्य आया। तीन साल तक जीन ने अपनी परवाह न करते हुए मुदिगिलियानि के जीवन को संभाला; उसे प्यार दिया, प्रसन्नता दी। वह घरटों उसके सामने बैठ कर उसे विभिन्न पोजेज देती रही। तीन साल बाद जीन ने एक बच्ची को जन्म दिया। मुदिगिलियानि की मृत्यु के बाद उसकी शवयात्रा में उसके मित्रों ने जीन को इसलिए सम्मिलित नहीं होने दिया था कि कहीं वह वियोग का आघात बर्दाश्त न कर सक। अतः उसे कमरे में बन्द कर दिया गया था। लेकिन मुदिगिलियानि की शवयात्रा में शरीक होने के लिए वह ऊँची खिड़की से नीचे कूद पड़ी और अपने प्राण त्याग दिए।

मुदिगिलियानि की आत्मनाशी मनोवृत्ति के पीछे उसकी अपनी ज़िद का हाथ था। इकलौता होने से उसकी परवरिश बड़े जतन से की गई थी। उसकी प्रत्येक इच्छा और माँग की पूर्ति की जाती थी। एक

बार वह टाईफाइड से मरते-मरते बचा था, तब से तो उसकी हर छोटी-बड़ी माँग पूरी कर दी जाती रही। एक बार वह अपनी नौकरानी से युवावस्था का खेल खेलते हुए पकड़ा गया था, तब सब ने शिक्षा देने के बजाय हँस कर उसे माफ़ कर दिया था।

जब उसने कलाकार बनने की इच्छा प्रकट की, तब उसके माता-पिता ने उसे पथम लेगहार्न, बाद में फ्लोरेन्स और वेनिस में पढ़ाने के लिए भेजा।

ये तीनों कला-केन्द्र इटली के बुद्धिमान् युवकों के ओहू थे। यहाँ के 'संधिप्रकाशगुट' में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में निराशा और ध्वंसक मनःस्थिति को पुष्ट किया गया था। जीवन में अमहन्शील वृत्ति के अभाव में इस गुट के कई सदस्यों का अन्त कांतिकारी और दुःखद हुआ। मुदिगिलियानि के जीवन में यही सान्निध्य का प्रादुर्भाव हुआ। विद्यार्थी क्षेत्र का पुरस्कार मिला था, जिसमें उसकी कला का प्रशंसा की गई थी। इसी उत्साह-वर्धक वातावरण में वह पेरिस पहुँचा था।

यहाँ आने पर उसका पारिवारिक जीवन छिन्न-सिन्न हो गया। उसे एकांत प्रिय बनना पड़ा। जिन्दगी की उदासीनता ने उसको पेरिस की विलासिता की ओर आकर्षित किया, जिसे वह अभाव से पान सका। निराशा-अभाव-द्वन्द्व ने उस शिल्पकार बना दिया। परन्तु यह काम भी वह ज़रादा दिनों तक नहीं कर सका; क्योंकि पत्थरों की धूल ने उनके फेफड़े खराब कर दिये। डेढ़ वर्ष के संघर्ष के बाद भी मुदिगिलियानि को कोई आश्रयदाता नहीं मिला। नशे में धुत उसके हाथ केनवास पर ब्रश के प्रहार करते रहे। फलतः उसकी कला आध्यात्मिक ऊँचाई पर गई। चित्रों में आकारों की मर्यादा टूट गई और रंगों का प्रभाव गठने लगा। कल्पना में विचरनेवाली निराकार रेखाएँ साकार हो कर बोलने लगीं।

मातृमात्रों औ मान्त पार नासे के मदिरालयों से पीकर जब वह भ्रमता चलता, तो वह इटालियन कविताएँ जोर-जोर से गाता रहता था। टेबिल कलाथ के साथ वह चित्रों को भी नष्ट करता। मध्य रात्रि में वह जाग कर अपनी बनाई हुई मूर्तियों को पक्षियों के आँगन में फेंक देता था।

कई बार कफे टेबिल पर, पुब्लिश स्टेशन या कभी अपने मित्रों की फूलवाली शय्या पर नग्न होकर हर्ष-

न्माद में सो जाता। एक बार कुछ लोगों ने उसे बेहोशी में कपड़ों की पेटी में बाँध दिया था। उसके घुटने छाती से लगते थे। उसी विचित्रावस्था में वह चला आ रहा था और बड़ी विकृत हँसी हँस कर जोर से चिल्लाता था :

‘ये धूल में पड़े देवता’

शेफ पेरसवालों के लिए वह ‘बोहेमियन्स का राजकुमार’ था।

जौन के साथ रहने पर उसके जीवन में कुछ व्यवस्था आ गई थी। उसने उस पहले वर्ष में १२५ चित्र बनाए थे। उसका कलाभक्त मित्र ज्वारोवस्की उसके एक चित्र को २० फ्रैंक में घूम-घूम कर बेचता था। अब तक तपेदिक ने उसके शरीर में घर कर लिया। उसके साथ मिली मदिरा की संगत। फिर क्या देखना। महान् चित्रकार आत्मघात के पथ पर धीरे-धीरे अप्रसर होना गया। ३० अप्रैल रात में मुद्रिलियानी जब अपने पुराने पियक्कड़ चित्रकार दोस्त उत्रिलो के साथ लुबकते-गिरते घूमता था, तब बेचारी जौन उसकी खोज में उसके पीछे-पीछे ठिठुरती रात में गिगती-पड़ती घूमती रहती। जनवरी १६२० की वह सर्द रात थी। मुद्रिलियानि को खोजते हुए उसका एक मित्र उसके यहाँ आया। उसने देखा, उसके रोंगटे खड़े हो गए। वह वधो नही था। यहाँ क नस सज्जाते में एक शव पड़ा था, जिसके निकट मस्तक पर हाथ धरे एक गर्भवती स्त्री शोकमग्न बैठी थी। उसके पास एक छोटी बच्ची थी, जो माँ की भावभंगिमा देख कर डर गई और चारों ओर मिंगरेट के खाली टिन, जली हुई सिगरेटों के टुकड़े, माचिस की तीलियाँ और शराबी की खाली बोतले इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं।

जब उसकी शवयात्रा निकली, तब मान्तमार्जे और मान्तपार निसे के तमाम निवासी उसमें सम्मिलित हुए; और जिस पुलिस ने जीवन-भर उसका पीछा कर उसका चैन हराकर दिया था, उन्होंने उसकी शवयात्रा को सम्मान प्रदान किया। रास्ते में उसका वे मित्र ज्वारोवस्की एक दुकानदार के यहाँ खड़ा था। दुकानदार उसकी मिलात कर रहा था कि १६० फ्रैंक में वह मुद्रिलियानि का चित्र उसे दे दे। चौबीस घण्टों के भीतर ही उसके चित्र की कीमत आठगुनी हो गई।

अन्ति-संस्कार की विधि पूरी होने पर ज्वारोवस्की

ने मुद्रिलियानि के भाई को पत्र लिखा :

‘आज मेरा मित्र अमेदे धरती की गोद में, फूलों की चादर ओढ़ कर, हमेशा के लिए अमंग निद्रा में सो गया। हमारे युग के अत्यन्त कुशल कलाकार का दुनिया ने जोश के साथ अन्तिम-संस्कार संपन्न किया। वह दुनियावालों का नहीं, तारों का (Stars) पुत्र था और दुनियावालों ने उसे सुख से जीवित रहने की सुविधा नहीं दी।’

राम मन्दिर गली,

तिलक पुतला,

नागपुर शहर

—भाऊ समर्थ

(२)

अवनीन्द्रनाथ : एक भारतीय कला-साधक

भारतीय चित्र-साहित्य के नील गगन में पीयूष वर्षा चन्द्रमा की भौति देदीप्यमान अवनीन्द्रनाथ और विश्व-चित्र-साहित्य में पावलो पिकासो को ऐसा कौन कलाकार होगा, जो न जानता हो। इस मनोरम प्रांगण में पीड़ा और उल्लास जीवन का प्रतीक रहा है। पावस के मेघाच्छन्न आकाश से गीतों की स्वर लहरी ने अपना गीत सुनाया। ऐसे ही काल में जोड़ासाँको के विदग्ध ठाकुर परिवार में अवनीन्द्रनाथ का जन्म सन् १८७१ के ७ अगस्त को हुआ। इनके पिता गुणेंद्रनाथ और पितामह (दादा) गिरिन्द्रनाथ भी चित्रकार के रूप में विख्यात थे। बालकपन से ही चित्र बनाने के शौकीन होने के कारण अपने पिता की तूँलिका और रंग लेकर गंगा किनारे चापदानी के बंगले में बैठ कर गंगा के विभिन्न दृश्यों को देखने में तन्मय हो चित्र के रूप में अंकित करना प्रारम्भ किया। यह वही स्थान था जिसने बालक अवनीन्द्रनाथ के सुप्त हृदय को जगाया।

वास्तविक रूप में देखा जाए तो उन्होंने स्कूली-जीवन में जो कुछ सीखा था वह सभी खंगडत रूप में था। कहा जाता है कि प्रारम्भ से ही स्कूल में अपने शिक्षक को उनकी त्रुटियाँ निकालने के फलस्वरूप प्रायः हाथों से बुरी तरह पिटा करते थे। इससे गुणेंद्रनाथ भी बड़े तंग आ गए। अन्त में उन्होंने अवनीन्द्रनाथ को स्कूल छोड़ा कर घर बैठा लिया। और घर पर ही पढ़ने-लिखने का प्रबन्ध कर दिया। घर पर पंडित जी महाभारत और कादम्बरी पढ़ाते थे, फ़ारसी पढ़ने का क्रम यथावत् चलता रहता। इसके साथ ही साथ संगीत

की शिक्षा देने के लिए राधिका गोस्वामी और बड़े-बड़े उस्तादों का साथ रहा।

अवनीन्द्रनाथ ने पेस्टोरल और तैल चित्र इटालियन चित्रकार सीन्योर गिलहर्डी और अंग्रेजी चित्रकार मिस्टर पामर के पास रह कर सीखा। पेस्टोरल और दृश्य चित्रों में उनका मन नहीं लगा तो फिर वे देश की विभिन्न शैलियों को हाथ में लेकर आगे बढ़े। इन चित्रों में भारत का दृश्य सामने आने से देश के प्रति श्रद्धा हृदय में उत्पन्न हुई और देश को फिर से पाने और देश के लिए कुछ निजी छोड़ जाने के लिए वे यत्नशील रहे।

‘मेरा दिया छोटा-सा है। गुरु का आदेश हुआ कि “अपने दिए को लेकर तुम अपने दरवाजे पर राहगीरों को मार्ग प्रदर्शित करने को खड़े हो जाओ। तभी से इस नन्हे-से दीपक के लिए बीच मार्ग में खड़ा हूँ। राहगीरों को आलोक दिखाने के लिए।” आज इसी दीपशिखा से शान्ति निकेतन में नन्दलाल वसु और सुरेन्द्रनाथ, इलाहाबाद में जित्तीन्द्र मजूमदार, लाहौर में समरेन्द्र गुप्त, जयपुर में शैलेन्द्र नाथ थे, दिल्ली में शारदाचरण आदि भारतीय कला के साधकों ने अपने-अपने दीप को जला कर प्रबुद्ध भारत को समुज्ज्वल किया है।

पाश्चात्य-शैली पर सन् १८८१ से १८९५ तक की अवधि में अधिकतर ‘पेन एण्ड इंक’ चित्र, सन् १८९५ से १९०० के बीच में इल्यूमीनेशन शैली के चित्र बनाए। सन् १९०० से १९१० के युग में जन साधारण परिचित शैली के चित्र: गणेश-जननी, विरही-यक्ष, चित्रावली आदि चित्र बनाये और उसे यथासंभव विकास पथ पर अग्रसर किया। इस शैली को विकास-शैली के नाम से भी कहते हैं। कहा जाता है कि शैली अवनीन्द्रनाथ की स्वयं की शैली है। इस शैली से जन-साधारण को चित्र समझने तथा बनाने में अधिक सुविधा होती है। जापानी कलाकार हिंसिदा और टाईकान सन् १९०५ के लगभग भारत में अतिथि के रूप में आए। अपने भारत प्रवास काल में वे कुछ माह ठाकुर-भवन में अवनीन्द्रनाथ के साथ ठहरे। अवनीन्द्रनाथ ने आवश्यकतानुसार उनकी शैली को अपनी कला में स्थान दिया। आगामी दस वर्षों की अवधि में उन्होंने साहित्यिक विषयों को छोड़कर वास्तविक जीवन तथा व्यंग्यात्मक चित्रों को ग्रहण किया। अन्तिम भोज,

चित्रावली इसी युग के चित्र है। अवनीन्द्रनाथ के अन्य कई चित्र-सन्धाल युवती, माँ, नर्तकियाँ, प्रजा, रेगिस्तान में मन्ध्या, पनिहारिन, माँझी आदि चित्र कभी-कभी पत्रों में प्रकाशित होते रहे हैं। अभिसारिका, मालिन की बेटी, फाल्गुनी की बाठल की भूमिका में रवीन्द्रनाथ, मोर, जेबुजिहा, नश्वर शरीर की अन्तिम भाँकी आदि चित्र उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने भारतीय शिल्प के छः अंगों और मूर्ति तत्व की व्याख्या अवश्य की, किन्तु उसमें प्राचीन रीति का अनुसरण नहीं किया। इसके अतिरिक्त किसी टेकनिक को उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के सहायक बनाया तो उसे भी बिना किसी द्विविधा के प्रयोग में लाते रहे। उनके राधा-कृष्ण सम्बन्धी चित्रों पर यूरोपीय धारा की छाप है।

आगामी दस वर्ष की अवधि में अवनीन्द्रनाथ ने अपने चित्रों के गठन की ओर ध्यान दिया। लगभग १९३० क आस-पास हैवेल के अनुरोध पर उन्होंने कलकत्ता में सरकारी कला शिक्षण केन्द्र के सहकारी अध्यापक पर हुए किन्तु, अध्यक्ष ब्राउन से मतभेद हो जाने के कारण वहाँ से त्याग-पत्र दे दिया। यह वह समय था जब कि इरिडियन सोसाइटी आफ़ थ्रोरिएटल आर्ट की स्थापना अवनीन्द्रनाथ द्वारा हुई थी।

“आज मेरी चिन्ता उन लोगों के लिए है जिन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए। जिन्हें पुरस्कार नहीं मिला, उनके लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं।” यह वाक्य कलकत्ता विश्वविद्यालय के शिक्षण केन्द्र के छात्रों की चित्र प्रदर्शनी के पुरस्कार-वितरणोत्सव में कहा था।

आज हमें यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि अवनीन्द्रनाथ भारत के चित्र-गुरु हैं और प्रत्येक कला रसिक और अध्ययनशील छात्रों के लिए इनकी कला के साथ साक्षात्कार होना आवश्यक है। इसके लिए राष्ट्र का यह कर्तव्य है कि वह राष्ट्रीय कलाशाला में अवनीन्द्रनाथ के अच्छे-अच्छे चित्रों को जो कि प्रकाशित न हो सके, संग्रह कर प्रकाशित कराइए ताकि कला-साधक इनकी कला का रसास्वादन कर प्रेरणा ले सकें।

श्री गोवर्धननाथ जी का मन्दिर,

नाहरगढ़ का रास्ता

—कृष्ण कुमार वर्मा ‘राज’



हिन्दी-पत्र

(१)

साहित्य और हमारा जीवन

साहित्य अतीत काल के घटनाचक्र तथा संस्कृति का परिचायक है। इसी की सहायता से सभी अतीत काल के राष्ट्रीय, आचार-व्यवहार तथा राजा और प्रजा के परस्पर सम्बन्ध इत्यादि के विषय में अन्वेषण करके ही इतिहासकारों की लेखनी को बल मिलता है। इस समय अनेक प्रकार के साहित्य मिलते हैं, जैसे हिन्दी, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, संस्कृत, पाली आदि आदि साहित्य तथा उन-उन देशों में प्रचलित भाषाओं का अपना अपना साहित्य है। उन साहित्यों से उन देशों के समा-लोचक अतीत के घटनाचक्रों को लेकर उसको इतिहास का रूप देते हैं। सभी साहित्यों में हमारा संस्कृत साहित्य अत्यन्त प्राचीन, समृद्ध एवं बद्धमूल है, इस विषय में विद्वानों के दो मत नहीं हैं, उसमें भी वैदिक साहित्य, अत्यन्त प्राचीनतम है। वैदिक साहित्य में भी 'ऋग्वेद' की सबसे प्राचीनता प्रसिद्ध है। वैदिक साहित्य के पश्चात् पुराण साहित्य तत्पश्चात् काव्य नाटक आदि। जिन देश में कुछ भी साहित्य उपलब्ध नहीं होता वहाँ के देशवासियों का अतीत सभ्यता एवं घटनाचक्र नहीं जाना जा सकता। वैदिक साहित्य सृष्टि से लेकर प्रलय काल पर्यन्त के सभी घटनाचक्रों को बतलाने में समर्थ है। सृष्टि कैसे होती है, क्या क्या उसके साधन हैं, किसका सबे प्रथम जन्म हुआ, संसार में कितने प्राणी हैं कितने स्थावर हैं, कितने जगम हैं, यह सब विस्तार पूर्वक इसी से ज्ञात होता है। यज्ञों का विधान उनके अत्यधिक देवताओं के स्वरूप आदि का सब वर्णन ब्राह्मण साहित्य में अविकल रूप से मिलता है।

पुराणों में प्राचीन राजाओं के चरित्रों का वर्णन उनका वंश तथा सृष्टि आदि का क्रम राजाओं का परस्पर युद्ध देवदानवों का आपस में संघर्ष इत्यादि सब विस्तार पूर्वक मिलता है। यदि हमारे देश का प्राचीन साहित्य न

हो तो कौन इतने प्राचीन काल के राम कृष्ण आदियों के पुनीततम चरित्रों को जान सकता। वात्सीकि रामायण में राम की पत्नी भक्ति, भरत का भ्रातृ-प्रेम, सीता का पति-व्रत धर्म, अहिल्या का उद्धार, हनुमान का समुद्र लंघन, विभीषण की रामभक्ति इत्यादि विषय हमको पढ़ने के लिए मिलते हैं यह सब साहित्य की ही देन है। 'श्रीमद्भागवत' में श्री कृष्ण का जीवन चरित जो आज भी मथुरा वृन्दावन में प्रत्येक घरों में गाया जाता है; महाभारत में कौरव-पाण्डवों का युद्ध, श्री कृष्ण की नीति कुशलता, भीम अर्जुन का युद्ध में पराक्रम, अभिमन्यु का अदम्य उत्साह आज तक दिखाई देता है। उसके पश्चात् काव्य नाटकों का समय माना जाता है।

असंख्य काव्य नाटक नायक और नायिका रूप में तथा सहायक रूप से रचित अनेक राजाओं के चरित्र कहे गए हैं और उनकी वीरता धार्मिकता और उदारता का भी वर्णन किया गया है। कविकुलकमल कालिदाम ने रघुवंशियों का चरित वर्णन करते हुवे 'रघुवंश' के उन उन सर्गों में अनेक प्रकार से अपनी विद्या का सफल प्रदर्शन किया है और अपना पाण्डित्य तो उसने प्रारम्भ के निम्न लिखित श्लोक में ही दिखा दिया है।

"वागर्थविष सम्पूज्य वागर्थप्रतिपत्त्ये
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ"

॥ 'रघुवंश' प्रथमसर्ग १ श्लोक ॥

यहाँ पर पार्वती और परमेश्वर को वाणी और अर्थ की सार्थक उपमा देते हुवे कवि ने व्याकरणसिद्धान्त का ठीक ठीक प्रदर्शन किया है। दूसरे सर्ग में महाराज दिलीप की गोसेवा का वर्णन करते हुए भारतीयों की प्राचीन गोसेवा पद्धति की परम्परा को भी अज्ञात नहीं रखा। वरदान देना आदि देवत्व गुणों का वर्णन करके गायों की सर्वदेवत्वमय होने पर भी संकेत किया है। तृतीय सर्ग में आपने आयुर्वेद के संविधान की ओर गर्मिणी वर्णन, सूतिका गृह व्यवस्था और कौमारसूत्र का संक्षेप

में वर्णन करते हुए वर्णन दिलाया है। जोमे चलकर आप उद्योतिष के मुख्य अंग आतक प्रकरण को अंकन भी अपने कार्य में रघु के जन्म का लें—“अहस्तः पश्चिमिर्ध्वं सभ्यै रस्यैर्गो स्थिति मध्यमस्यैर्ध्वं” इस श्लोक के द्वारा चरितार्थ करते हैं, इसी से ज्ञात होता है कि आप उद्योतिष शास्त्र के भी अविकल ज्ञान समूह से अलंकृत थे। चतुर्थ सर्ग में रघु की द्विविध यात्रा के बहाने से संक्षेप में सभी देशों की स्थिति नदी, पर्वत आदि का वर्णन करते हुए इतिहास भूगोल का स्वकीय ज्ञान भी उन्डेल डाला है। पञ्चम सर्ग में राजाओं की धर्म मर्यादा, ब्राह्मण सम्मान, अतिथि पूजा का महत्त्व और उनकी उदारता का पूर्ण परिचय दे दिया है, साक्ष्य ही यह भी दिखला दिया है कि इनके प्रताप को दिग्पाल (कुबेर आदि) भी स्वीकार करते थे। उस समय राजाओं की उदारता और ब्राह्मणों का निर्लोभी होना रघु और कौत्स के व्यवहार में स्पष्ट करा कर भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अजर एवं अमर बना दिया।

यह सब साहित्य का ही माहात्म्य है जो हम अपने प्राचीन सदाचार और सभ्यता को जानने में समर्थ हैं, नहीं तो इतनी प्राचीन अपने देश की व्यवस्था को जानने के लिए किमका मुँह जोहना पड़ता। कल्प केवल सुनने की वस्तु है। काव्य में मनुष्य केवल उन उन घटनाओं का प्रवण क संकेत हैं और नाटकों में सब प्रत्यक्ष रूप में प्रकट व्यक्त किया जाता है, इसीलिए कवियों में नाटक आग मयोजन प्रिय है विद्वानों का मत है, और नाटकों में ही ‘अभिज्ञान’ शाकुन्तलम् को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है, इसमें प्रेक्षिक खेलने के लिए राजा दुष्यन्त बन को जाते हैं वहाँ दुष्यन्त और शकुन्तला में प्रेम हो जाता है। एकान्त में बैठ कर राजा के हृदय में चिन्ता होती है कि यदि यह महर्षि कण्व की अपनी कन्या हुई तब तो विवाह में धर्म संकट उपस्थित हो जायगा, फिर उसके मन में एकनिश्चय हो जाता है।

“असंशयं चत्र परिग्रहं चाम,
यदार्यमस्यामसिलापि मे मनः
सतां हि संदेह पदेषु वस्तुषु,
प्रमाणं मन्तः करणप्रवृत्तयः”

यद्यपि कामी पुरुष सदस्य विवेक में अक्षमर्थ रहता है तथापि यहाँ इस प्रकार का वर्णन कर के कवि ने

इसकी परिशिष्टात्मक झलक कर के ऐसे समय में भी विचार सामर्थ्य दिखाया है। तत्कालीन संदर्भ विवेक से शकुन्तला का दुष्यन्त से विवाह होना ही शकुन्तला के साथ विवाह करने के लक्ष्य में महर्षि कण्व शकुन्तला को वसु-राल में जाकर कैसे व्यवहार करना चाहिये इस का स्वयं उपदेश देते हैं :

“शुश्रूषस्व गुरुन् प्रियसखी वृत्तिं सपत्नी जने,
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषयातया मास्म प्रतीपं गमः
भूयिष्ठं भव दक्षिणां परिजने भार्येध्वनुत्सकिनी,
यान्त्येवं गृहिणी पदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः”

तुम बड़ों की सेवा करना, अन्य ज्ञानियों के साथ मिश्रता का व्यवहार करना, पति के माराज होने पर भी तुम गृह में आकर अपने पति के विरुद्ध कार्य मत करना, हमेशा सरल स्वभाववाली रहना, कष्ट पक्ष पर उदासीन न होना, इसी प्रकार जियोगे गृहिणी बना करती हैं, कुलटा जियाँ तो नस कुल के लिए व्याधि रूप हो जाती हैं। उस समय पिता के घर से पति के घर जाने वाली नवविवाहिता बन्धुओं का ऐसा व्यवहार प्रचलित था यह प्राचीन सभ्यता इस श्लोक से सूचित होती है। अतः माहात्म्य में ही राष्ट्र का अभ्युदय तथा प्राचीन सभ्यता का ठोस ज्ञान हो सकता है। इसीलिए हमारे संपूर्ण साहित्य मनुष्य मात्र के लिए अनाद उपकारक हैं। अतः मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए अपने साहित्य की अध्ययन आवश्यक करना चाहिए साथ ही अन्यान्य साहित्यों का भी।

सी. के. ७/६६ सिद्धेश्वरी,

वाराणसी

—ब्रह्मानन्द त्रिपाठी रांची

(२)

ज्ञान-योगी अरविन्द और महात्मा गांधी

आध्यात्मिक ध्येय से परिपूर्ण भारतीय संस्कृति को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करनेवाली दो महान् विभूतियों की जीवन-लीला हमने इसी युग में देखी हैं। एक को इस पृथ्वी पर राक्षस राज्यां लाना था तो दूसरे को दिव्य-शक्ति, जो हमारे जीवन में (प्रकृति में) आमूल परिवर्तन कर दे। ये दो महान् विभूतियाँ थी—महात्मा गांधी और श्री अरविन्द।

यदि इन दोनों महान् पुरुषों की परंपरा तुलना की

जाए तो हमें प्रथम दृष्टि में विरोध ही दृष्टिगोचर होगा। हमारी बाह्य दृष्टि से इन दोनों में बिल्कुल असमानता दिखाई देती है, क्योंकि प्रायः बाह्य दृष्टि से संसार में जहाँ तहाँ विरोध, भेद और जीवन की खिचड़ी ही नज़र आती है। एक ओर गांधी जी सर्व-माधारण से घुल-मिल जाते थे और हरिजनों से लेकर विद्वत् के बुद्धि-जीवी और प्रगतिशील वर्ग तक के सम्पर्क में रहते थे। हरिजनों से उन्हें विशेष सहानुभूति थी। वे सदैव हज़ारों के सहवाय में रहे और परस्पर विवाद, मन्त्रणाएँ आदि में दिलचस्पी लिया करते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन राम के आदर्शों पर आधारित और मादगी से परिपूर्ण रहा। उनके विचार, माधन, लेखन आदि से उनकी मादगी स्पष्ट है। उन्होंने हरिजनों के साथ रह कर म्मोपड़ी को अपनाया। उनकी उस क्षीण देह को देख कर करुण-भाव ही उत्पन्न होता है, परन्तु मुख पर सदैव निर्दोष हास्य विद्यमान रहता था।

लेकिन श्री अरविन्द मदैव आधुनिक-तम साधनों से युक्त आश्रम में ही रहे, वे सामान्य जनता से दूर बिल्कुल एकान्त वाम में रहना पसन्द करते थे। वे कृष्ण-भक्त थे। उनका जीवन दिव्य था और इसी दिव्यता के लिए ही उनकी साधना थी। गिनती के लोगों के साथ उनका सहवास हुआ, जिनमें अधिकांश प्रथम कोटि के साहित्यकार और बुद्धि-जीवी वर्ग के ही लोग होते थे। उनकी लेखन कला सर्व-माधारण की समझ की बाहर की बात थी। उनका शरीर दृढ़ था और सिर के बड़े-बड़े बाल मदा सुव्यवस्थित रहते थे।

परन्तु यह विरोध बाह्य दृष्टि से ही दिखाई देता है। प्रथम दृष्टि से ही जो कुछ दिखाई दे, वह सदैव मय्य नहीं होता। मय्य सदा गहराई में विद्यमान रहता है। इस जगत् पर से दृष्टि उठा कर अन्तर में झाँकिए, तो यह प्रकट विरोध लुप्त हो जाएगा। और उसके स्थान पर एककृपा स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगेगी।

इन दोनों महापुरुषों के ध्येय में और उस ध्येय को प्राप्त करने की विधि में कहीं कोई अन्तर नज़र नहीं आता, बल्कि साम्य ही दृष्टिगोचर होता है। इन दोनों मय्य के खोजियों ने अपने प्रयोगों को एक वैज्ञानिक की तरह निरन्तर कसौटी पर कसा है। यह बात महात्मा गांधी की आत्म-कथा और अरविन्द जी के 'दक्षिण' में प्रकट विचारों में देखी जा सकती है। जीवन और

ध्येय प्राप्ति में जागृति और लगन दोनों में समान रूप में विद्यमान थी।

साधना के लिए वैराग्य, त्याग, संयम और अहंकार-त्याग की आवश्यकता है। इस दृष्टि से गांधी जी में वैराग्य पूर्ण रूप से था। वे स्व-पशुत्वों को ही अपने हृदय में आधार-स्वरूप स्थान देते थे। इसी कारण वे सबको सुगंध और वश में करने में सफल हुए हैं। इनका अपूर्व त्याग वैराग्य के बिना कैसे टिक सकता? उनकी बेह भले ही सतत परिश्रमण करती रही हो, परन्तु मन सदा अन्तः से लगन लगाए रहता था, जिसे वे राम कहा करते थे। उसी प्रकार श्री अरविन्द के जीवन में भी यह तीव्र वैराग्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक ही स्थान पर चालीस वर्षों तक सतत रहना और उसमें बाहर आने का लोभ तक न होना, यह बात बाल जगत् में आमक मन के लिए कैसे संभव हो सकती है? गांधी जी ने अपने आत्म-बल द्वारा बाह्य जीवन में परिवर्तन कर प्रत्येक घटना को आनन्द में बदल दिया था तो श्री अरविन्द ने अपनी आत्म-शक्ति से स्वयं के अन्तर में परिवर्तन कर प्रत्येक घटना को आनन्द में बदल दिया था।

ईश्वरी तत्त्व सब समान होते हैं। वे जब क्रिया-शील होते हैं तो उनके तरीकों में भिन्नता आ जाती है। परन्तु उनके पीछे शक्ति तो ईश्वरी ही होती है। मय्य अपने अहंकार को एक ओर रख दिया जाए तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है। ईश्वर ने यह संसार व्याकृत-स्वार्थ पूर्ण के हेतु या भोग-विलास के हेतु नहीं बनाया, अपितु अमुक निश्चित सिद्धि हेतु बनाया है। हेतु (ईश्वरी-हेतु) सिद्ध करने के लिए ईश्वरकेखा के अधीन रह कर मन-सुख के लिए नहीं बल्कि प्राणि-मात्र के लिए जीना चाहिए, हमारी संस्कृति का यह संदेश इन दोनों राष्ट्र-गुरुओं ने हमें भिन्न-भिन्न रीति से दिया है। हमारे राष्ट्र से सम्बन्धित इन दो महान् विभूतियों के जीवन में समस्त विश्व युगयुग पर्यन्त प्रकाश प्रदूष करता रहेगा।

कटरा, पुरानी शिवपुरी
शिवपुरी (मध्य-प्रदेश)

—पुरुषोत्तम जोशी

(३)

जून २६ की 'अजन्ता' देखी। ये कविताएँ सुखि-

सम्पन्न और सरस है। लेकिन कविवर भगवत प्रसाद-सिंह की रचना सर्वश्रेष्ठ है; उसमें गेयता है और अनुभूति का उच्छल प्रवाह भी। श्री केदारनाथ अप्रवाल का गीत लोक-गीत धुन पर आधारित है पर साहित्यिक गरिमा से हीन। कवि ने काव्य की आत्मा को गौण बना दिया है और छान्दसिक नियोजन को प्रधान। श्री चन्द्रगुप्त मयंक के बादल गीत में काव्य-सज्जना की प्रौढ़ि परिलक्षित नहीं होती। कहीं-कहीं यति भंग है।

सम्पादकीय सभी अंकों के विद्वतापूर्ण होते हैं, इसमें शक नहीं है। लेखों और कहानियों का चयन भी सुन्दर है।

मुंगेर

—लक्ष्मी नार यथ शर्मा मुकु

(४)

“दूर नहीं”

“..... आप की कविता में सरलता और भावपूर्णता के जो गुण सदा रहते हैं। वे आप की कविता “दूर कहीं” में भी पूर्ण रूप से विद्यमान हैं :

“इसका तन तो मिट्टी का है,

किन्तु हृदय सच्चा सोना है

मलय स्नेह यदि जागृत हो मिट्टी से स्वर्ण निकलता है।

—उपयुक्त पंक्तियाँ बहुत सुन्दर हैं।.....”

गुरुकुल कांगड़ी,

हरिद्वार

—इन्द्र विद्यावाचस्पति

(५)

आपने सरकारी ‘बेसिक हिन्दी बोकेव्यूलरी’ पर जो कुछ लिखा है, उस से मैं १००% सहमत हूँ। बरन्तु आपकी और मेरी सुनता कौन है। आपाधापी मची है और सभी सब काम करने में समर्थ हो रहे हैं, कर रहे हैं, बिगाड़ रहे हैं, फिर कर रहे हैं। भगवान् जाने क्या होना है।

हिमालय एजेंसी

कनखल, (उ० प्र०)

—किशोरीदास बाजपेयी

(६)

‘अजन्ता’ नियमित रूप से मिलती है। उसे पढ़ कर तथा आपके द्वारा उसके संपादन में किए जाने वाले परिश्रम को देखकर बड़ी श्रद्धा भावना उत्पन्न होती है।

आप जिस प्रकार विविध विषयों की सामग्री का संकलन करते हैं और विभिन्न रुचि वाले पाठकों का संतोष एवं मनोरंजन करते हैं वैसा प्रयत्न बहुत कम सम्पादकों द्वारा होता दिखाई देता है। ‘अजन्ता’ के जून का सम्पादकीय विचार पूर्ण एवं विरोधियों की आँखें खोल देने वाला है।

उज्जैन

—गोपीवल्लभ उपाध्याय

(७)

यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप ‘चिट्ठी-पत्री’ के इस स्तम्भ को भी साहित्यिक रूप दे रहे हैं और नममें विवेचनात्मक चिट्ठियों को भी प्रकाशित कर रहे हैं।

भारत सरकार के प्रकाशनों पर आपकी समालोचनाएँ पढ़ता रहा हूँ। इस प्रकार निष्पक्ष हो कर सरकार के प्रकाशनों की आलोचना करने वाले समालोचक कम देखे। सरकार के प्रकाशनों को देख कर खेद इस बात का होता है कि जनता का धन, पानी की तरह खर्च किया जा रहा है। इधर हाल में Basic Hindi Vocabulary शीघ्र पुस्तिका देखने को मिली। पुस्तिका पढ़ी और आपकी समालोचना भी। पुस्तिका को देख, ऐसा प्रतीत हुआ कि हिन्दी के प्रति एक अनधिकार चेष्टा हुई है। भूमिका में बताया गया है कि यह अहिन्दी प्रान्तों को दृष्टि में रख कर बनाई गई है। मतलब यह हुआ कि हिन्दी प्रान्त के लिए अलग Basic Hindi होगी और अहिन्दी प्रान्तों के लिए अलग। ‘बेसिक’ का मतलब नहीं समझा शायद।

विद्वान् संपादकों ने सकना—Can को किया मान लिया है। घूमना का अर्थ turn, revolve होता है पर Wonder नहीं !! खेलना शायद Basic word नहीं है।

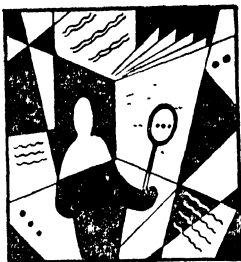
हमारा विश्वास है कि आपकी समालोचनाओं को भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के अधिकारी नजरन्दाज नहीं करेंगे। इस प्रकार के प्रकाशनों के लिए तीन ही नहीं काफ़ी अधिक विद्वानों के सलाह सुझाव की आवश्यकता है।

‘भाषा की विकृति’ पर सम्पादकीय मार्के का है।

जिरा कम्पाउण्ड,

सिकन्दराबाद

—भीमसेन ‘निर्मल’



गीर-द्वीर..

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अज्ञन्ता' के नाम भेजी जानी चाहिए ।]

परम्परा भाग ६-७ (राजस्थानी बात-संग्रह)

सम्पादक : नारायण सिंह भाटी

प्रकाशक : राजस्थानी शोध संस्थान,
जोधपुर

मूल्य : ₹०००

श्रीयुत नारायण सिंह भाटी ने 'परम्परा' के भाग ६-७ में प्राचीन हस्त लिखित पुस्तकों से राजस्थानी 'बातों' का संग्रह करके हिन्दी की अमूल्य सेवा की है। राजस्थानी में गद्य का माहिर्य "बात, खयात, पीढ़ी, वंशावली, टीका, वचनिका, हाल, पट्टा, बही, शिलालेख, खत" आदि अनेक रूपों में पाया जाता है परन्तु इनमें 'बातों' का "स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। इन 'बातों' में प्रायः सभी प्रकार की कथाएँ प्राप्त होती हैं।" 'बात' शब्द का 'कथा' के अर्थ में प्रयोग स्वाभाविक ही है। बंगाली में कहानी को 'गल्प' कहते हैं और 'गल्प' का अर्थ 'गप्प' या 'गपशप' अर्थात् बातचीत होता है। संभवतः 'बात' शब्द भी इसी प्रकार 'कहानी' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा होगा। गुजराती में 'बात' शब्द के लिए 'वात' शब्द का प्रयोग होता है। राजस्थानी में 'व' का उच्चारण 'भ' से कुछ मिलता जुलता है इसलिए इसे विशिष्ट ध्वनि को स्पष्टतया अस्मिन्व्यक्त व्यक्त करने के लिए 'व' की पाई की नीचे एक बिन्दु लगाकर 'व' लिखा जाता है परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में इसे 'ब' ही लिखा गया है। भारत की कई अन्य भाषाओं में भी 'व' का उच्चारण 'भ' के समान होता है। यह विशेषता एकमात्र राजस्थानी की नहीं है। बंगाली में 'व' का उच्चारण 'भ' के समान होता है। 'वोट' शब्द को बंगाली में 'भोट' लिखा जाता है। इसी प्रकार

मराठी में 'व' का उच्चारण 'व' में 'ह' की ध्वनि मिलाकर किया जाता है और 'वोट' शब्द को 'व्होट' के रूप में बोला और लिखा जाता है। हो सकता है कि 'व' का उच्चारण पहले कुछ इसी प्रकार का किया जाता हो कि उसमें कुछ 'भ' की कुछ ध्वनि भी मिली हुई हो। हिन्दी में 'व' और 'भ' के उच्चारण में किसी प्रकार की समानता नहीं है और यद्यपि संस्कृत 'वात' के लिए 'वार्ता' शब्द का प्रयोग होता है तो भी अब क्योंकि साधारणतया 'वात' शब्द का प्रयोग होता है इसी कारण संग्रहक महोदय ने इस शब्द का 'बात' के रूप में ही प्रयोग किया है। संस्कृत में 'वार्ता' का अर्थ किसी घटना या कहानी का कथन भी होता है। श्रीयुत मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में 'वार्ता' शब्द का अर्थ निम्न प्रकार किया है : "An account of anything that has happened, report, rumour and story of or about." अच्छा होता कि यदि प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादक महोदय अपनी भूमिका में राजस्थानी में 'बात' के ऐतिहासिक विकास पर कुछ प्रकाश डालते। यह संभव है कि राजस्थानी साहित्य में "बात" साहित्य का विशेष महत्व हो परन्तु यह बात तो स्पष्ट ही है कि "बात" एकमात्र राजस्थानी साहित्य में ही नहीं प्राप्त होती। व्रजभाषा के माहिर्य में भी प्राप्त होती हैं और वे राजस्थानी 'बात' से भिन्न नहीं हैं "वार्ता" व्रजभाषा में किसी हुई कई 'वार्ताएँ' प्रसिद्ध हैं "चौरासी वैष्णवन की वार्ता", 'दो सो वैष्णवन की वार्ता।' और इसी प्रकार व्रजभाषा में कई अन्य वार्ता हैं। क्योंकि इन पुस्तकों में कुछ वैष्णव भक्तों और कवियों के जीवन के सम्बन्ध में कुछ घटनाओं का वर्णन दिया गया है इसलिए इन्हें संभवतः कथा-साहित्य में सम्मिलित नहीं किया गया है परन्तु वास्तविकता तो

यह प्रतीत होती है कि यहाँ भी 'वार्ता' का अर्थ 'कथा' ही है। इन पुस्तकों में चोरासी और दो सौ वैष्णवों की कथा है। और अन्य वार्ताओं में भी कथाएँ हैं।

क्योंकि पहले ये 'बातें' मौखिक रूप में थी और पीछे इन्हें लिपिबद्ध किया गया है इस लिए संभवतः इन कथाओं को 'लोक-कथा' समझ लिया गया है। यह संभव है कि इन कथाओं में कुछ कथाएँ ऐसी हों जो 'लोक-कथाएँ' भी हों परन्तु इन समस्त कथाओं को एकमात्र इसलिए 'लोक-कथा' कहना क्योंकि ये कथाएँ पहले मौखिक थीं—और बाद में इन्हें लिपिबद्ध किया गया है—समुपयुक्त नहीं प्रतीत होता। यदि ये समस्त कथाएँ 'लोक-कथाएँ' होतीं तो इनका प्रचलन सर्वे-साधारण में अब भी पाया जाता। फिर यह भी नहीं कहा जा सकता कि जिन लिपिकारों ने इन कहानियों को लिपिबद्ध किया है—उन्होंने इन 'बातों' का संग्रह सर्वे-साधारण के बीच में में किया है या किसी ऐसे व्यक्ति ने उन्हें इन 'बातों' को लिखवा दिया है जिन्हें वे रमण्य थीं—और या फिर उस समय किसी प्रायः पुस्तक के आधार पर उन्होंने इनको लिपिबद्ध किया कुछ भी हो इन 'बातों' को एकमात्र लोक-कथाओं तक सीमित करना इन कहानियों के क्षेत्र को सीमित करना होगा क्योंकि इन कहानियों में मरुपकार की कहानियाँ प्राप्त होती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में आठ राजस्थानी बातों का संग्रह किया गया है। इनमें से पहली 'बात' जिसको कि 'वारता' लिखा गया है भाद्रपद शुक्ला १४ संवत् १८७२ (मृ १८१५) में लिखा गया है। दूसरी बात 'जलाल-बूबना' के सम्बन्ध में 'बात' क अन्त में लिखा गया है कि यह पुस्तक "शुभ शिवरात्रि के दिन 'उज्जयी पिचयानवै' में नारायणप्रसाद ने लिखी। पुस्तक की टिप्पणियों में सम्पादक महोदय ने लिखा है कि इस 'बात' की हस्तलिखित प्रति 'लगभग १०० वर्ष प्राचीन' है। शेष प्रतियों क अन्त में तो कुछ लिखा हुआ नहीं है परन्तु सम्पादक महोदय ने उनमें से अन्य ५ प्रतियों के सम्बन्ध में लिखा है कि उनकी जो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं वे भी 'लगभग १०० वर्ष प्राचीन' हैं। केवल सातवीं 'बात' की हस्तलिखित प्रति के समय के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा गया है। इन 'बातों' का रचयिता कौन है—इसके सम्बन्ध में संभवतः इसलिए कुछ लिखने की आवश्यकता को नहीं समझा गया है

क्योंकि इन कथाओं को लोक-कथा मान लिया गया है परन्तु जिस प्रकार इन 'बातों' की रचना की गई है उनसे इस बात का आभास प्राप्त होता है कि इन कथाओं की रचना की गई है। 'बातों' की रचना की विशेषता के सम्बन्ध में सम्पादक महोदय ने लिखा है : इन 'बातों' की सामान्य विशेषताओं पर विचार करने समय सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि मूल रूप से इन बातों का निर्माण कहे जाने के लिए हुआ है।... बात का आरम्भ भी विशेष ढंग से किया जाता है। कथा कहने वाला एकाएक कथा प्रारम्भ न करके पहले उसकी भूमिका कुछ पद्यों के माध्यम से बौधता है। ये पद्य प्रायः उस देश की भौगोलिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं के बारे में होते हैं जिनके साथ नायक-नायिका का सम्बन्ध होता है। फिर बात की प्रशंसा में कुछ पद्य कहे जाते हैं।... हस्तलिखित प्रतियों में प्रारम्भिक अंश नहीं मिलते क्योंकि इनका प्रयोग बात कहने वाले की रुचि पर निर्भर करता है।... इन बातों की कथा के सम्बन्ध में भूमिका में लिखा गया है : "इनमें मुख्य कथा के अतिरिक्त छोटी-बड़ी अन्य सहायक कथाओं का भी प्रयोग मिलता है। प्रासंगिक कथा में भी कड़े बार दूसरी कथा आ जाती है और कई कथाओं का क्रम तो एक दूसरी कथा में में निकलता आता है।" राजस्थानी बातों की यह विशेषता इस बात की यातक है कि 'बातों' का निर्माण एक विशेष ढंग से होता है और इस विशेष ढंग का अर्थ है कि इसको लिखनेवाला कोई विशिष्ट व्यक्ति होना चाहिए। विशिष्ट व्याक्त की रचनाएँ भी जब लोभप्रिय हो जाती हैं तो उनकी भाषा आदि में परिवर्तन हो जाता है। इन 'बातों' में 'दोला-मारु' के सम्बन्ध में लिखा गया है कि "श्री उदयराज उज्ज्वल का कहना है कि इस 'बात' का रचयिता चारण कवि महाराज महडू है। कई बातों की प्रतियों में महाराज महडू स्वयं पात्र के रूप में भी उपस्थित होता है।"

इन 'बातों' की भाषा का मुख्यतया राजस्थानी होते हुए भी उनमें कई प्रकार की भाषाओं का सम्मिश्रण है। इनमें खड़ी बोली और व्रज भाषा का तात्पर्य ही सम्मिश्रण है। यदि भाषा में समय समय पर परिवर्तन होता रहा है तो भाषा की दृष्टि से इन 'बातों' से अनुसन्धान के कार्य में कुछ विशेष सहायता प्राप्त नहीं हो

सकती। भाषा के सम्बन्ध में भूमिका में लिखा गया है : “इन ‘बातों’ की भाषा पुरानी राजस्थानी है पर समय के दौरान में भाषा का रूप निरन्तर बदलता गया है इसलिए सम्पादित ‘बातों’ की भाषा का रूप निरन्तर बदलता गया है। इसलिए सम्पादित भाषा का रूप अधिक प्राचीन नहीं है।.....वार्तालापो में प्रायः पात्रों के अनुरूप ही भाषा प्रयोग मिलता है। यहाँ तक कि कई ‘बातों’ में तो मुसल्मान पात्रों के मुँह से उर्दू अथवा फ़ारसी मिश्रित भाषा प्रयुक्त हुई है। हिंगल अथवा राजस्थानी के अतिरिक्त शुद्ध संस्कृत तथा अरबी-फ़ारसी के शब्दों का भी सम्मिश्रण हुआ है। अरबी फ़ारसी के शब्द तो राजस्थानी में घुल-मिल कर एक हो गए हैं।” इतना ही नहीं इन ‘बातों’ को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक स्थानों पर हिन्दुओं और मुसल्मानों के रीति रिवाज भी एक जैसे हो गए हैं। मुसल्मानों के भोजन में भी “छप्पन भोग, छत्तीस व्यंजन सगळो साथ एक मारीखो भोजन हुवै।...जीमियाँ पाँखे पान सुपारी मारा नूँ देवें। कवीस्वर असीम जगकार पढ़े।” विवाह के साथ नारियल का भी वर्णन जलाल और मुसल्मान बादशाह के सम्बन्ध में किया गया है। इन ‘बातों’ में जो दोहे प्राप्त होते हैं उनमें से कई दोहे हिन्दी में प्रसिद्ध हैं। उनमें कुछ थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया गया है। मारू अपनी महेली से एक दोहे में कहती है :

“मपनै राजजण पाइया, हूँ सुत्ती गल लाय,
और न खोलूँ अंखड़ी, मत मजण फिर जाय”

यह दोहा कबीर की रचनाओं में निम्न प्रकार प्राप्त होता है :

“मपने में साईं मिले, मोवत लिया जगाय
आँखि न खोलूँ डरपता, मत मपना है जाय”

इसी प्रकार कई अन्य दोहों को उद्धृत किया जा सकता है।

‘जलाल-बुवन’ बात में बादशाह ने पूछा कि “सुघष छैल” को किस प्रकार पहचाना जा सकता है। इसका जो उत्तर काजी ने दिया है वह बड़ा मनोरंजक है :

बादशाह कही : “सुघष छैल क्यूँ कर जाणिए।”
तरे कह्यो : “सौंपै जणा माथा रा केस उलझाय

देवें, पाछे कौंसी के कैंरो रे ऊपर धरे तिको पाधरी चली आवै, अटकाव नहीं होवै, धरती तक चली आवै, सो पूरो सुघष छैल कहीनै।” अर्थात् स्नान करते समय जिसके बाल उलझा दिए जाएँ, उलझा देने के बाद कभी बालों में ऊपर रखने में नीचे सरकती चली आए, कहीं न अटकें, सीधी धरती तक नीचे चली आए उसे ‘सुघष छैल’ कहते हैं।

मरवणी की सुन्दरता का वर्णन करते हुए ‘ढोला मारू’ बात में जो उपमाएँ दी गई हैं उनमें एक उपमा कुछ विचित्र-सी प्रतीत होती है। मरवणी की ‘पगधली’ की तुलना ‘कुत्ते की जीभ’ से की गई है। कहा गया है : “मारवणि पदमांश, नै चन्द्रमा सो बदन, प्रगलोचणी, हँस की-सी गति, कटि सिंघ सरीखी है। काया सोलमो सोनौ, मुख री सोरभ किस्तूरी जसी छै।... बेणी जाणै नागणी। बौह जाणै चम्पारी डाल। ऐसी सुपारी-सी नै पगधली स्थान री जीभ सरीखी छै।” कुत्ते की जीभ लाल होती है इसी प्रकार मरवणी के पाँवों के नीचे का हिस्सा लाल है परन्तु फिर भी मरवणी के पैर की लाली की तुलना कुत्ते की जीभ से करना मौखिक होते हुए भी कुछ उपयुक्त नहीं प्रतीत होता।

ये ‘बातें’ मनोरंजक तो हैं ही। वाक्य छोटे छोटे हैं। वर्णन में सरलता, स्वाभाविकता और सरसता है। इन ‘बातों’ को पढ़ने से जहाँ कई बातों पर प्रकाश पड़ता है-वहाँ इनमें विचार और अनुशीलन की भी पर्याप्त सामग्री है। सम्पादक महोदय ने इन ‘बातों’ का सम्पादन जिस श्रम और योग्यता से किया है उसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। आशा है कि इसी प्रकार वे अन्य ‘बातों’ और राजस्थानी प्राचीन साहित्य का सम्पादन करेंगे। अच्छा होता कि यदि इन ‘बातों’ का अनुवाद हिन्दी में भी अविकल रूप से मूल पाठ के साथ नीचे दे दिया जाता। इससे इन कहानियों को समझने में उन लोगों को भी बहुत सहायता प्राप्त होती जो कि राजस्थानी भाषा को ठीक तरह नहीं समझ सकते। प्रत्येक पृष्ठ के नीचे कुछ कठिन शब्दों के अर्थ दिए गए हैं-और श्रियुक्त कमल कोठारी के निबन्ध ‘कथा की बात’ में, जिसे कि ‘परम्परा’ के इन अंकों के सब से अन्त में प्रकाशित किया गया है इन राजस्थानी की ८ बातों के सारांश को दे दिया गया है।

विज्ञान के नए चरण : [विज्ञान के आधुनिक सिद्धान्तों की रोचक व्याख्या]

लेखक : ब्रह्मानन्द त्यागी

प्रकाशक : अशोक प्रकाशन,
लखनऊ

मूल्य : ५.००

इस समय किसी भाषा में चाहे कितना ही समृद्ध साहित्य क्यों न हो यदि उसमें अप-टू-डेट वैज्ञानिक और यांत्रिक साहित्य नहीं है—तो उसकी गिनती विश्व की महान् और विकसित भाषाओं में नहीं की जा सकती। यह युग विज्ञान और यन्त्रों का है। जिस प्रकार आज विश्व में वही देश सब से अधिक विकसित और समृद्ध समझा जाता है जिसमें कि विज्ञान और यन्त्र विद्या की उन्नति हो गई है—इसी प्रकार विश्व में आज वे ही भाषाएँ मान और सम्मान की रतनी ही अधिक अधिकारिणी हैं जितना अधिक कि उनमें वैज्ञानिक और यांत्रिक प्रौढ़ साहित्य है। यह प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी में अब वैज्ञानिक साहित्य दिन-पर-दिन प्रगति कर रहा है और जो लोग इस दिशा में प्रयत्न कर रहे हैं वे देश और भाषा की महान् सेवा कर रहे हैं। क्योंकि हमारे देश में शिक्षा का विकास जैसा कि होना चाहिए वैसा नहीं हो पाया है—इस कारण हमारे देश और हमारी भाषाओं में इस प्रकार की वैज्ञानिक पुस्तकों की अत्यधिक आवश्यकता है जो कि सरल से सुबोध और रोचक भाषा में लिखी गई हों और जिनसे कि सर्वे साधारण के वैज्ञानिक ज्ञान में उन्नति हो।

प्रस्तुत पुस्तक इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर लिखी गई है। लेखक ने अपने विषय को इस प्रकार सरल और रोचक बनाने का प्रयत्न किया है कि जिससे एक साधारण व्यक्ति भी आज के वैज्ञानिक प्रश्नों को यदि समझ न सके तो उनका कुछ आभास तो प्राप्त कर सके। इसमें संन्देह नहीं है कि लेखक ने अपने विषय को रोचक और सरल भाषा में लिखने का प्रयत्न किया है परन्तु उसके विषय की टेकनीक ही कुछ ऐसी जटिल और रहस्यमय है कि ज्यों ही वह विषय के कुछ विस्तार में जाने का प्रयत्न करता है—उसका विषय भी कुछ जटिल और रहस्यमय होने लग जाता है और यह सर्वथा स्वाभाविक है। लेखक ने आइन्स्टीन के सापेक्ष

सिद्धान्त को सरलता से समझाने का प्रयत्न किया है। लेखक पुस्तक के आमुख में लिखते हैं : “प्रकृति में दो मूल बल काम कर रहे हैं; एक गुरुत्वाकर्षण बल और दूसरा विद्युत-चुम्बकीय बल।... लगभग एक शताब्दी पूर्व यह माना जाता था कि विद्युतीय बल तथा चुम्बकीय बल सर्वथा पृथक् और आमूल हैं परन्तु फ़ैराडे अपने अनुसन्धानों के आधार पर इन दोनों बलों में मूलतः एकता स्थापित करने में सफल हुआ।... विज्ञान प्रकृति के विभिन्न पहलुओं में एकता स्थापित करने में तत्पर है।... आइन्स्टीन को पूर्ण विश्वास था कि विश्व में एकता और तादात्म्य है।... यही वह समस्या थी कि जिसके समाधान में आइन्स्टीन अपने अन्तिम वर्षों में लगे रहे।”

अच्छा होता कि लेखक अंग्रेजी और हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों की सूची पुस्तक के अन्त में दे देते और सूची के साथ उनके अर्थों को सुबोध भाषा में लिख देते। इससे वैज्ञानिक सिद्धान्तों को समझने में और भी अधिक सुविधा हो जाती। विज्ञान के सम्बन्ध में लेखक ने लिखा है : “विज्ञान कोरा अनुमान है; अनुमान रहेगा। निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति विज्ञान में असम्भव है।”

अच्छा होता यदि प्रस्तुत पुस्तक के लेखक और प्रकाशक ‘पोप्यूलर साइन्स’ को कुछ खंडों में विस्तार से लिखें। इससे केवल हिन्दी में प्रामाणिक वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण में ही प्रगति नहीं होगी अपितु सर्वसाधारण में वैज्ञानिक विषयों को सूक्ष्म रीति से समझने की ओर रुचि भी जागृत होगी।

महापुरुषकीर्तनम्

लेखक : धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

प्रकाशक : धर्मदेव विद्यामार्तण्ड,

आनन्द कुटीर, ज्वालापुर

मूल्य : २.००

हमें श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड की सरल, सुबोध और शुद्ध संस्कृत में लिखी हुई प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ कर प्रसन्नता हुई। उनका संस्कृत पर वैसा ही अधिकार है जैसा कि हिन्दी पर। वे अंग्रेजी के भी अच्छे विद्वान हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रस्तावना आदि के अतिरिक्त ७ कांड लिखे गए हैं। पहले काण्ड में उन्होंने श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्ण का; दूसरे काण्ड में महात्मा बुद्ध, रामानन्द,

कवीर, महात्मा गांधी, अरविन्द और रमण महर्षि आदि का; तीवरे काण्ड में कवियों और विद्वानों का; चौथे काण्ड में समाज-सुधारकों का; पाँचवें काण्ड में भारतीय देशभक्तों और वीरों का; छठे काण्ड में राष्ट्र-नायकों का और ७ वें में विदेश के महापुरुषों का संकीर्तन किया है। इसके साथ ही एक परिशिष्ट भी दिया गया है जिसमें कुछ और महानुभावों का कीर्तन किया गया है। लेखक की जिस जिस मह पुरुष और महानुभाव के प्रति श्रद्धा और भक्ति है उसके प्रति उन्होंने संस्कृत में इन कीर्तनों के द्वारा अपनी भक्ति श्रद्धाजलि अर्पित की है। संस्कृत के श्लोकों के साथ उन्होंने हिन्दी में उनका अनुवाद दे दिया है। यह गुणकीर्तन व्यक्तिगत और प्रत्यक्ष परिचय के आधार पर किया गया है। महापुरुषों का गुण-कीर्तन भी भगवान् के गुण-कीर्तन के समान होता है। पुस्तक को शुद्ध रूप से छापने का प्रयत्न करने पर भी पुस्तक में 'शुद्धि पत्र' को लगाना पड़ गया है।

‘कृतील’ शिफाई और उनकी शायरी

सम्पादक : प्रकाश पंडित

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट,

दिल्ली—६

मूल्य : १. ५०

“सदमे मेल्लें, जान पै लेल्लें, इससे मुझे इनकार नहीं है
लेकिन तेरे पास वफा का, कोई भी मेझार नहीं है”

कतील शिफाई की नज़्मों और ग़ज़लों को पढ़ने से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपनी कविता में वफा, मुहब्बत और प्रेम का एक नया मेझार कायम करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने निम्न लिखित शेर में अपनी अवस्था का किम गहराई से चित्रण कर दिया है :

“और होंगे वो, मयस्सर हैं जिन्हें लुफ़े-बहार,
हम तो गुलशन में भी रहते हैं बयाबों की तह
.....

तुमने रातों में सितारे तो टटोले होंगे
मेने रातों में अंधेरे ही अंधेरे देखे
.....

दिल मेरा शम की धड़कती हुई तबवीर सही”

इतने पर भी कतील शिफाई को ‘कायनात से प्यार है’

और इतने पर भी उनके हृदय में नवीन उमंगें हैं और उनकी भावनाओं में ताज़गी है। “तेरे दर पर पहुँच कर ताज़गी महसूस करता हूँ।”

जरा उनकी ‘तवाजो’ देखिए :

“हम किया करते हैं अशकों से तवाजो क्या-क्या,
जब खयालों में वो आ जाते हैं मेहमों की तरह”

दिल की सूरत :

“लाख पैबन्द उमीदों ने लगा रखे हैं
दिल की सूरत नज़र आती है गिरेबों की तरह”

अशक पिरोना :

“जब कभी दूर तबस्वुर में निकल जाता है
मे तेरी जुल्फ में कुछ अशक पिरो जाता हूँ”

ऐसा प्रतीत होता है कि कति जैसे अपनी ही कविता के सम्बन्ध में कह रहा है :

“चमनवाले खिज़्रों के नाम से घबरा नहीं सकते,
कुछ ऐसे फूल भी खिलते हैं जो मुरझा नहीं सकते

कतील की कविताएँ भी ऐसे ही फूल हैं जो ~~मुरझा~~
मुरझा नहीं सकते।

ललित कुंज,

गगनमहल कौलोनी,

हैदराबाद—१

—वंशीधर विष्णुकार

फतहनामा गुरु खालसाजी का

सम्पादक : प्रो० सीताराम कोहली

प्रकाशक : विश्वेश्वरानन्द प्रकाशन, होशियारपुर

मूल्य : ३-६०

‘फतहनामा गुरु खालसाजी का’ महाराजा रणजीत सिंह के दरबारी कवि गणेशदास की काव्य कृति है। यह कवि द्वारा लिखित महाराजा रणजीत सिंह की यशो गाथा है। श्री सीताराम कोहली को पंजाब विश्वविद्यालय ने १९१५ में महाराजा रणजीत सिंह की सरकार के अभिलेखों का अध्ययन कर उनका अधि-कारिक और विस्तृत विवरण तैयार करने के लिए नियुक्त किया था। इन अभिलेखों को खालसा राज्य की समाप्ति के पश्चात् अंग्रेजों ने अपने अधिकार में ले लिया था। श्री कोहली ने इस बहुमूल्य सामग्री को कमबद्ध विवरण

सहित प्रस्तुत किया है। जो कि 'खालसा दरबारिकाईज' के नाम प्रकाशित हुआ है प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन भी श्री कोहली के प्रयास का ही प्रयत्न है।

कवि ने अपनी इस कृति में मुलतान युद्ध और पेशावर युद्ध का आँखों देखा वर्णन किया है। मुलतान विजय अभ्रजों को अच्छी न लगी। इसका नत्लेख कवि गणेशदास ने 'मुलतान युद्ध' के निम्न कवित्त में किया है :

“सुन्यो फिरंगी, जो पैजी है भुजंगी
हम भई नचगी, मनमाहि सो विचारते
किल्ली लियो मुलतान, लूटे हिरे पजे आन
सब मारे दुरकन बड़े हुते जो उदारते
सम्भाल राखो दिल्ली बात जानो नहि पिली
सिंह आवे जे है सिरली, बहुत सेना हूँ चढ़ावते
पूरब सो पच्छिम जान, उत्तर और दक्खन मान
मारी मुलतान, दर सम ही सो पावते”

इसके प्रकाशन द्वारा हिन्दी साहित्य के एक महत्वपूर्ण अंग पर प्रकाश पड़ता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि काव्य होते हुए भी इसमें ऐतिहासिक तथ्यों और तिथियों को यथाक्रम और यथावत रखा गया है। इससे खालसा युग के इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है। मूलपाठ को टिप्पणियों सहित संकलित करने से ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ गई है। श्री सीताराम कोहली ने इस रचना का सम्पादन बड़ी योग्यता एवं परिश्रम पूर्वक किया है।

कला के लिए

लेखक : भार्गवराम विठ्ठलचरकर

अनुवादक : क० श० केतकर

प्रकाशक : आत्माराम एण्ड मन्ज कारभरीगेट

दिल्ली—६

मूल्य : १.२५

‘कला के लिए’ चित्रकला को लेकर लिखा गया एक नाटक है। इसे तीन अंकों में समाप्त किया गया है। लेखक ने दिखाया है कि सच्चा कलाकार समाज का पथ प्रदर्शक होता है; समाज उसका पथप्रदर्शक नहीं बन सकता। जन्मजात कलाकार गुलामी, परम्परा, अनुकरण, प्रतिष्ठा तथा कृत्रिम प्रेमपत्र आदि रोगों से सबंधा युक्त रहता है और अपनी स्वतन्त्र कला पर

अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देता है। नाटक यथार्थवाद की भूमि पर आधारित है। एक स्थान पर नाटक का नायक सुन्दर राव अपनी शिष्या मन्दा से कहता है : ‘मेरे यहाँ तुम सीखने न आओ। सरकारी कला मन्दिर में जाओ।’ तब मन्दा कहती है : ‘कला मन्दिर में जाकर मुझे डाईंग मास्टर नहीं बनना है।’ मन्दा का यह उत्तर सही है। आज की वस्तु स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की आजकल सरकारी कला संस्था भी पूर्ण रूप से व्यापारी संस्था बनी हुई है। आज के कलाकार को विभिन्न परिस्थितियों में अपनी कला का निर्माण करना पड़ता है। लेखक ने पुरुष की निर्बलता पर भी काफ़ी प्रहार किया है। कल्याणी : ‘रोने से डरते हैं। ये हैं पुरुष लोग। कहते हैं पुरुष धैर्यवान होता है, रजनी सच तो यह है कि पुरुष कितना दुर्बल है यह हम औरतें ही जानती हैं। बाल्यावस्था में उसे माँ संभालती है। हमारी बीमारी में भी माँ बहनें ही खयाल रखती हैं और प्रेम के कारण भी किसी युवती के कंधे पर सिर टिकाने के लिए आतुर रहता है यह धैर्य का पुतला। इन लोगों के सहारे हमें जीना होता है। ऐसे दुर्बल प्राणियों के सहारे जीना होता है हम औरतों को (पृष्ठ ५७)।’

शिष्टाचार

लेखक : मन्तराम

प्रकाशक : विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन,

डोशियारपुर (पंजाब)

मूल्य : २.००

‘शिष्टाचार’ नामक पुस्तक में पच्छीम निबन्ध ‘शिष्टाचार’ के ऊपर मनोवैज्ञानिक ढंग से लिखे गए हैं। जिन से जीवन के विविध क्षेत्र की समस्याओं की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके। और लोक जीवन में मधुरता आ सके। पुस्तक उपयोगी है। प्रत्येक घर गृहस्थ को दैनिक जीवन में इससे लाभ उठाना चाहिए।

चक्र व्यूह

लेखक : लक्ष्मी नारायण मिश्र

प्रकाशक : कौशाम्बी प्रकाशन इलाहाबाद

मूल्य : १.७५

‘चक्र व्यूह’ में नाटककार ने पौराणिक आख्यान

को अधिक से अधिक मानवीय और बुद्धि संगत रूप प्रदान किया है। पौराणिकता के रूप पर अपने बुद्धि-बल से नए रूप का प्रकाश डालना चाहिए। जो न्याय संगत हो। जिससे पौराणिक रूप हमारे सामने शुद्ध मानवीय रूप में रहे। महाभारत के 'वक्रव्यूह' के घटनाक्रम पर यह नाटक लिखा गया है। गीतों द्वारा इस नाटक के कथोपकथन में एकता का समावेश हुआ है, जो कि आवश्यक था। नाटक में दिखाया गया है कि अन्त में उत्तरा का गर्भस्थ-शिशु दोनों कुलों की रक्षा का आधार बनता है। नाटक में पात्रों द्वारा कहलाए गए संवाद उच्चकोटि के हैं। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

कुहासा

लेखक : प्रेमेश्वर मिश्र

अनुवादक : हंसकुमार तिवारी

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरीगेट, दिल्ली-६

मूल्य : २-५०

'कुहासा' बंगला के प्रसिद्ध लेखक श्री प्रेमेश्वर मिश्र के उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। इसके चित्रण में लेखक की असामान्य प्रतिभा प्रस्फुटित हुई है। इसका कथानक असामान्य घटनाओं पर आधारित है जिस पर लेखक ने अपनी कलम का पूर्ण रूप से वास्तविक प्रयोग किया है।

उपन्यास के नायक विमल के मन मस्तिष्क पर अकस्मात् ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह एकाएक अपने अतीत से बिल्कुल अलग हो जाता है। इसके अन्तर्द्वन्द्व का लेखक ने सजीव रूप से चित्रण उपस्थित किया है। सामाजिक क्षेत्र में उनका पदार्पण और मित्र-परिवार से लगाव और फिर भूत और वर्तमान के संघर्ष में पाप और पुरय का संघर्ष बन कर प्रकट होता है।

कुहासा का नेटअप और छपाई सुन्दर है।

धरती हमारी है

अनुवादक : रामचन्द्र टण्डन

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स काश्मीरीगेट,

दिल्ली-६

मूल्य : २.००

'धरती हमारी है' विलियम काजलो के एक

प्रसिद्ध नाटक का हिन्दी अनुवाद है। पूँजीवादी मनो-वृत्ति नए और पुराने संसार का मेद मानती नहीं। वह सर्वत्र समानता चाहती है। किन्तु पूँजीवाद सब राष्ट्रों में किसी न किसी रूप से, बहुत थोड़े लोगों से, बहुत अधिक लोगों का शोषण हो रहा है। पूँजीवाद की शृंखला के हिलने का वर्णन नाटक से सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ है। नाटक की कल्पना अमरीका की भूमि पर की गई है। परन्तु यह घटना सब राष्ट्रों में आज भी विद्यमान है। अनुवाद सफलतापूर्वक हुआ है। भाषा का भी प्रयोग सावधानी से किया गया है।

हर्ष

लेखक : गोविन्ददास

प्रकाशक : भारतीय साहित्य मन्दिर, फरवारा

दिल्ली

मूल्य : १-५०

महाराजा 'हर्ष' के चरित्र पर श्री गोविन्ददास जं का लिखा हुआ 'हर्ष' नाटक चार अंकों में समाप्त हुआ है हर्ष की कथावस्तु पूर्ण रूप से ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। किन्तु गुप्त वंश के संघर्ष को नाटककार ने कुछ अधिक रूप प्रधान किया है। ऐतिहासिक क्रमों को नाटक में शृंखल से न कर के आगे पीछे करने से नाटक की रोचकता में कमी खटकती है।

शिव, सूर्य एवं बुद्ध का संयुक्त पूजन कान्यकुब्ज में तथा सर्वस्व दान प्रयाग में होता था परन्तु नाटककार ने इन घटनाओं का एकीकरण करके पाठक को चौंका दिया है।

नाटक के सम्बोधनों द्वारा इसकी प्राचीनता की झलक मिलती है। साथ ही अग्नी और फारसी के शब्दों के भी प्रयोग से नाटककार ने भरसक बचने का प्रयत्न किया है किन्तु कहीं कहीं पर शब्द फिर भी आ गए हैं। पुस्तक की छपाई सुखि पूर्ण है। इतना होते हुए भी नाटक सफल है।

हमारे सहयोगी

रसवन्ती (पाण्डेय स्मृत अंक)

सम्पादक : डा० प्रेमनारायण टंडन

प्रकाशक : विद्यामंदिर प्रेम रानी कटरा, लखनऊ

मूल्य : रु. २५

'रसवन्ती' का जुलाई और अगस्त ५६ क

संयुक्त अंक स्वर्गीय पण्डित रूपनारायण पारड्ये की स्मृति में 'पारड्ये स्मृति' अंक के रूप में प्रकाशित हुआ है। स्वर्गीय पारड्ये जी की साहित्यिक 'सेवाओं' से हिन्दी जगत भली-भाँति परिचित है। उन्होंने हिन्दी की समृद्धि के लिए जीवन पर्यन्त कठोर साधना की है। द्विवेदी युग के प्रमुख साहित्यकारों में आपका मुख्य स्थान है। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व बहुमुखी था। सामग्री का चयन सुन्दर ढंग से किया गया है। इस स्मृति अंक के प्रकाशन लिए 'रसवन्ती' के सम्पादक और प्रकाशक बधाई के पात्र हैं। विश्वास है कि पारड्ये स्मृति ग्रन्थ में और भी मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत की जाएगी।

समालोचक (यथार्थवाद विशेषाङ्क)

सम्पादक : डा० रामविलास शुर्मा

प्रकाशक : भोलानाथ आप्रवाल बागमुजफ्फर खाँ का आगरा

मूल्य : प्रति अंक ०.६०

समालोचक का दमरे वर्ष का प्रथम अंक यथार्थवाद विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित हुआ है। इस अंक में यथार्थवाद के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया गया है। किसी भी दृष्टिकोण में किसी भी प्रकार का मेद हो परन्तु मानव जीवन की यथार्थता से इनकार नहीं कर सकता और न साहित्य ही उसे अमान्य समझता है।

साहित्य में यथार्थवाद शब्द के व्यवहार पर जो मत मेद उठता है। वर्तमान समय में विभिन्न दृष्टिकोण हैं। उन सब पर विविध प्रकार के लेखों का चयन इस विशेषांक ज्ञान प्राप्त होता किया गया है जिससे यथार्थ सम्बन्धी बहुत सी बातों का है। और साहित्य की मूल धारा यथार्थवाद के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से इस अङ्क में प्रकाशित लेखों में और संपादकीय में प्रकाश डाला गया है। विशेषांक अपने नाम को सार्थक करता है। संपादक मण्डल ऐसा विशेषांक निकालने के लिए बधाई के पात्र है।

कल्पना (सौवा अंक)

सम्पादक मण्डल : डॉ० आर्येन्द्र शर्मा, मधुसूदन चतुर्वेदी, बन्नी विशाल पित्ती, सुनीन्द्र, गौतमराव,

प्रकाशक : ५१६ सुलतान बाजार, हैदराबाद

जिस प्रकार का 'कल्पना' विशेषांक का प्रचार और

प्रसार हुआ उसनी उपयोगी सामग्री विशेषांक में नहीं दिखती। विशेषांक की सामग्री का चुनाव भी ठीक ढंग से नहीं किया गया। 'कल्पना' का प्रकाशन आन्ध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद से होता है किन्तु अभी तक 'कल्पना' में प्रान्तीय भाषा के सम्बन्ध में सामग्री प्रकाशित नहीं की जाती। ज्ञात नहीं होता कि संपादक मण्डल की इस सम्बन्ध में क्या नीति है ?

'कल्पना' में प्रकाशित विगत सौ अंकों की वर्गीकृत अनुक्रमणिका इस विशेषांक में प्रकाशित करके इसके कलेवर में वृद्धि की गई है। विशेषांक के संपादकीय का विवेचन गहराई से नहीं किया गया है।

आपका स्वास्थ्य (स्कूल स्वास्थ्य विशेषांक)

सम्पादक : विश्वनाथ मुखर्जी

प्रकाशक : इंडियन मेडिकल एसोशिएन वाराणसी

मूल्य : प्रति अंक ०.५०

'आपका स्वास्थ्य' का छठे वर्ष का ग्यारहवाँ अंक 'स्कूल स्वास्थ्यविशेषांक' के नाम से प्रकाशित किया गया है। विशेषांक अपने नाम को सार्थक करता है। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों के विद्वतापूर्ण लेख दिए गए हैं। स्कूल स्वास्थ्य के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। उसके उद्देश्य और योजनाओं को ही समझाया गया है।

उद्योग-व्यापार पत्रिका

प्रकाशक : वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय,

भारत सरकार, नई दिल्ली

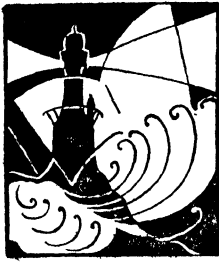
मूल्य : प्रति अंक ०.५०

उद्योग-व्यापार पत्रिका का नव वर्ष विशेषांक हमारे सामने है। विशेषांक में उद्योग विकास के संबंध में विविध उद्योग और धन्यों से सम्बन्धित लेख हैं। विविध उत्पादनों के सम्बन्ध में भी विवरण दिया गया है। विशेषांक में कागज अधिक मोटा लगाया गया है। जिससे इसका कलेवर मोटा हो गया है। किन्तु अङ्क में उसनी आकर्षक सामग्री नहीं है।

१७० हाईकोर्ट रोड,

हैदराबाद-२

—ऋषि मामचन्द्र कौशिक



सामयिक

॥

मे क्यों चित्रण करता हूँ

श्रीयुत हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय एक कवि, गायक और नाटककार हैं। कुछ वर्षों से उन्होंने आलेखन और चित्रण का कार्य प्रारंभ किया है। कई स्थानों पर उनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ भी हुई हैं। पिछले दिनों उन्होंने "मे क्यों चित्रण करता हूँ" इस सम्बन्ध में आकाश-वाणी, बम्बई से एक वार्ता अंग्रेजी में प्रसारित की थी। इस में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

"...तब मेरी आयु कठिनाई से ११ वर्ष की रही होगी। मुझे पूर्ण स्पष्टता के साथ स्मरण आता है : ओह, मेरी स्मृति कितनी विशद है—कि एक दिन सायंकाल मोटर में जाते हुए निम्न पंक्तियाँ मेरे पास आईं :

"डूबते हुए सूर्य के चरण

कैसे सुन्दर रंगों को ढोकर जा रहे हैं

ऐसा प्रतीत होता है कि द्वारों प्रकार की रंगों की स्याही
आकाश पर गिरकर बिखर गई है"

मानों हज़ारों प्रकार के रंगों की स्याही—
हाँ, यह रंगीन स्याही मेरे हृदय को सदा आकर्षित करती रही है और शायद मेरा एक दूसरा मन है जो सदा बच्चे के रूप में रहता है। वह पीटर पैन के समान है जो कि कभी बड़ता नहीं। जब मैं उन वर्षों पर दृष्टिपात करता हूँ जो कि अब व्यतीत हो चुके हैं तब मुझे ऐसा अनुभव होता है कि यह बालक मन जो कि समस्त जीवन मेरे साथ रहा है उसने पंक्तियों का निर्माण कर दिया। यह एक वाचस्पति बात है। नहीं, यह बिलकुल विचित्र नहीं है जब कि मेरे अदृश्य बालक मन ने १९५६ में एकाएक, अचानक चित्रण करना प्रारम्भ कर दिया। प्रागम्भिक चित्रों में मैंने निब के द्वारा रंगीन स्याहियों से चित्र बनाए। मेरे अन्दर चित्रों के निर्माण की

इच्छा इतनी बलवती थी कि मैं इसको किसी प्रकार दबा नहीं सकता था। मैंने इस प्रकार १७० छोटे-छोटे चित्र रंगीन स्याहियों से केवल निब से बना डाले और ये सब चित्र मैंने केवल तीन मास के लघु समय में ही बनाए। इसके पश्चात् मैंने जल के और दूसरे रंगों में ४०० चित्र बनाए। मेरे अन्दर के कलाकार को बाहर आने के लिए इतने वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी है। ये सब चित्र मैंने किसी नियम या निश्चित सिद्धान्त के आधार पर नहीं बनाए हैं; ये तो वैम ही बने हैं जैसा कि इन्हें मेरे मन ने उन्हें बनाया है।

ये रंग न केवल मेरे मन को सदा नवीन प्रेरणाएँ प्रदान करते रहे हैं अपितु ये सदा मेरे मन की पकड़ कर बैठे रहे हैं और मैंने इनकी यन्त्रणा से मुक्त प्रातः करने के लिए ही चित्रों को बनाना प्रारम्भ किया। मैं पहले इन रंगों की हलकी सी अभिव्यक्ति अपनी कविताओं में करता रहा। मेरे कविता के समालोचक मुझे 'रंगों का चित्रकार' कहते हैं। सत्य तो यह है कि मैंने रंगों की शराब का पान किया है और इन रंगों ने मुझे पूर्ण रूप से पागल बना दिया है; इन्होंने मुझे आसहीन बना दिया है। ये रंग मुझे न केवल आकर्षित और आल्हादित करते हैं अपितु मुझे यन्त्रणाग्रस्त और एकान्तप्रिय बना देते हैं। मैं कीटम से बिलकुल सहमत नहीं हूँ जिसने कि कहा था : "एक सुन्दर वस्तु सदा का आनन्द है" संसार में रंग से सुन्दर अन्य कोई वस्तु नहीं है और जहाँ तक मे सम्भ्रता है कि सुन्दर वस्तु सदा एक बला होती है। मुझे रंगों के सम्बन्ध में अपनी एक कविता का स्मरण आ रहा है। मैंने इस कविता में रंगों के सम्बन्ध में कहा है :

"इनके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता।

मेरी आत्मा कभी नहीं चल सकती

सफ़ेद और अकेली सीढ़ियों पर

प्रत्येक सीढ़ी पर मुझे और भी अधिक व्यथित करती हुई क्योंकि रंग एक ऐसी यंत्रणा है जिससे कि मैं सदा छटपटाता रहता हूँ”

चित्र-निर्माण ने मेरे अन्दर मेरे बाह्य काल को पुनर्जन्त कर दिया है। इसने मेरे जीवन की आयु को बढ़ा दिया है। यह बचपन जो कि प्रेम और सुन्दरता का मिश्रण होता है प्रयत्नहीन प्रयत्न के द्वारा निर्माण करता है क्योंकि बचपन में प्रयत्न लुप्त प्रहण कर लेता है और मानो समस्त कार्य बिना किसी प्रयत्न के आप-से-आप हो जाते हैं। यह मेरा एक वाचित्र-सा अनुभव है; यह रेखा आकृति की आकारिक अतिशयता विज्ञासिता की चरम सीमा तक पहुँच जाती है। मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि एक कलाकार अपने रक्त से अपनी कला का निर्माण करता है (ठीक उसी प्रकार जैसे कि एक कवि) और यही रक्त चित्रण में अनेक प्रकार के रंग बन जाता है। प्रत्येक प्रकार का रंग कलाकार के खून में होता है।

मेरा बालक मन प्रत्येक वस्तु को इस प्रकार आश्चर्य-चकित हो कर देखता है जैसे कि मानो वह उसे पहली बार ही देख रहा हो। उसकी दृष्टि में हमेशा ताजगी रहती है, इसके लिए सुन्दरता सदा एक चमत्कार के समान होती है। बाल-मन में एक प्रकार की उद्देश्य-हीनता, उच्छ्वसता और अवारागर्भा होती है और उसने मेरे हाथों को मेरे चित्रों में अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाया है। यही कारण है कि जो चित्र मैंने बनाए हैं—उनमें रंगों और आकृति का किसी प्रकार का कोई नियम नहीं है क्योंकि मैंने चित्रकला के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की है। हवा वैसे ही बहती है जैसी कि वह बहना चाहती है।

किसी ने पिबालों पिकासो से पूछा कि वह क्यों चित्र बनाता है और उसने जो उत्तर दिया वह इस प्रकार का है कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो उसी प्रकार का उत्तर प्रदान कर सकता है। वह क्यों चित्र बनाता है? वह क्यों कविता लिखता है; वह क्यों गाता है? वह क्यों नृत्य करता है? इस प्रकार के प्रश्न एक चित्रकार, कवि, गायक और नृत्यकार से किए जा सकते हैं। मुझे यह तो पूर्ण रूप से स्मरण नहीं है कि पिकासोने इसका

क्या उत्तर दिया था परन्तु मैं उसके उत्तर के सारांश को बता सकता हूँ। पिकासो ने कहा था: “मैं क्यों चित्र बनाता हूँ? यह प्रश्न इसी प्रकार का है जैसा कि एक पक्षी क्यों गाता है? या फूल क्यों लिखते हैं? या फल क्यों रंगीन हो जाते हैं? या वायु क्यों बहती है। दूसरे शब्दों में विश्व में एक प्रकार का Rhythm (लय) है, यह प्रत्येक वस्तु में है: उल्लास का दोलन, व्यथा की उन्मत्तता, उन्मत्तता की व्यथा। कला समय की शाश्वत-तिका को भेंट है और शाश्वतिका की समय को भेंट है। जब कोई कलाकार सृष्टि करता तब उसकी मृत्यु हो जाती है और यह इस की मृत्यु होती है जो कि जीवन को नव-जीवनता प्रदान करती है। और जो कलाकार है वह अभिव्यक्ति के बिना रह ही नहीं सकता। ठीक उसी प्रकार जिय प्रकार कि प्रकृति अभिव्यक्ति के बिना रह ही नहीं सकती। कलाकार भी प्रकृति का एक अंग है। कीट ने अपनी इन दो सुन्दर पंक्तियों में अपनी सृजन-शक्ति की भावना की इस प्रकार अभिव्यक्ति की है :

“मुझे स्वर्ग में सिखाया गया था
रागिनियों के हृदय को कष्ट से मुक्त करना”

मेरी भी कुछ इसी प्रकार की अवस्था है। मैं भी अपने रागिनियों से पूर्ण हृदय को कष्ट से मुक्त करता रहा हूँ। मैं कई बार हारा हूँ, गिरा हूँ, निराश हुआ हूँ। जब मैंने कविता लिखी है तब तो मेरे बाल-मन ने रंगों और आकृतियों में अपने आप को उन्मुक्त किया है। यह है। अपने को एक भार से, यंत्रणा से और स्वप्नों के रंगीन पक्षी को बन्धन से मुक्त करना था और मैं अपने मन का इसलिए धन्यवाद करता हूँ कि उसने एक अनेक रंगों के पक्षी को वह स्वतंत्रता प्रदान कर दी जिसके लिए कि वह अनेक वर्षों तक छटपटाता रहा था।

॥

श्री कृष्णदेवराय

‘वाणी’ (मद्रास) में ‘विजयनगर साम्राज्यः उत्थान व पतन’ शीर्षक से डा० आ० रामचन्द्रय्या का लेख प्रकाशित हुआ था। उसका निम्न अंश दिया जा रहा है।

“विजयनगर का नाम लेते ही श्रीकृष्णदेवराय का स्मरण हो आता है। उनकी महानता ही ऐसी है। उस

दिन हरिहर को विद्यारण्य के सम, कृष्णाराय के लिए तिमिरुसु मंत्री, गुरु, सर्वस्व थे। उम्मसूरु, शिवसमुद्रपुर की विजय, पूर्वाप्रविजय, कलिंग पर आक्रमण, कलिंग राजकन्या का पाणिप्रदण, दक्षिणापथ (मदुरा) के सुल्तान का गर्व भंजन, आदि इनके महान् कृत्य हैं। वे इस लेख का विषय नहीं हैं। मंदिर व तालाबों का निर्माण, कवि-पंडितों को आश्रयदान, वैष्णवजन परितोषण, राग-योग-त्याग परायणता आदि गुण उनके शासनकाल में जितने दृष्टिगोचर होते हैं उतने और कहीं नहीं।

उम समय के शिल्पियों की छैनी के लिए शिलाओं में प्राण की प्रतिष्ठा करना लीला-मात्र है। विद्वत् स्वामी के मंदिर क शिलास्तंभों का संगीत मानव हृदय को गला देता है। उग्र नरसिंहमूर्ति का, अपने जाघ पर बैठी लक्ष्मी की ओर देख प्रणय-सौम्य होना देखते ही बनता है।

विजय यात्राएँ और मतत युद्ध रायलु के देव दर्शन में अबचनें उपास्थित नहीं करते। पूर्व कलिंग पर आक्रमण के समय ही रायलु कई बार तिरुपति, तिरुमल, कालहस्ति, कोंची, अरुणाचल, अहोबिल, अमरावती, श्रीकाकुल आदि पुरयत्त्रों के दर्शन करते ही रहे। परम्परा के ज्ञाता उस राजा ने स्वयं वैष्णव होते हुए भी शिलाखेलों पर विरुपाक्ष की छाप ही रखी। उनकी राजसभा संस्कृत की अपेक्षा तेलुगु शारदा की सभा है, तेलुगु के लिए कल्पतरु की छाया है। तेलुगु के पंच-महाकाव्यों में श्रीनाथ के शृङ्गार नैषध को छोड़, शेष चार, उन्हीं के शासन काल में रचे गए हैं। उनमें स्वयं कृष्णदेवराय का लिखा 'आमुक्त मान्गदा' एक है। दूसरा उनके राजकवि पेद्दना का रचा 'स्वारोचिष मनु सभवसु' है।

रेड्डी राजाओं की सभाएँ 'त्रैलोक्य विजय भवन' में होती थीं तो कृष्णाराय की सभाएँ 'सुवन विजय' में होती थीं। दिशाव्यापी रायलु के यश के लिए 'भवन' कहीं यथेष्ट थे? भवन ही चाहिए। वहाँ जियने आदर प्राप्त किया, वही कवि है। वहाँ के कवियों को तर्क में काव्य-रचना में पराजित करने वाले कवि बिरले ही हैं। सरुत कलाओं में निष्णात कविगण यहाँ समाविष्ट होते थे वहाँ 'गजशेखर चरित्र आदि काव्यों को जितना आदर मिलता था, 'संगीत स्यादय' आदि को उतना

ही सम्मान। वहीं विकसित हुई 'प्रबोध चन्द्रोदय' व्याख्या, मूल (रामायण), पारिजात और रामाभ्युदय। वहीं बोल उठीं मेलवीणाएँ और मेटल वीणाएँ। (विशिष्ट प्रकार के वीणावाद्य हैं।)

ईसा के १५०६ से १५३० तक कृष्णाराय का शासन समय है। वह एक युगमान्ध है और भारत के भविष्य की नान्दी है। व्यापार के लिए आए हुए यूरोपीय पुर्तगाली लोगों ने १५०६ में आन्वूर्क के नेतृत्व में, भारत के भूभाग गोवा पर अपना अधिकार कर लिया। उसी १५३० में ही उधर दिल्ली में बाबर की मृत्यु हुई। पर वहाँ उसने मुगल साम्राज्य की स्थापना की। भविष्य के तेलुगु नायकराजाओं के शासन के लिए अशेष तेलुगु जनता दक्षिण में जाकर बस गई।

॥

विश्व विख्यात गायिका : मारियन एडीसन

विश्व-विख्यात गायिका मारियन एडीसन के विषय में 'लीस्टेडवोक्ली' में एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें से निम्न अंश दिया जा रहा है :

“आज समस्त विश्व में मारियन एडीसन अपनी मोहिनी मधुर आवाज के कारण विख्यात हो गई हैं। इनकी आवाज में इतनी शक्ति है कि वह जनता को रुला देती है और सम्मोहित कर देती है।

मारियन के विश्व विख्यात होने की कहानी से सभी परिचित हैं। वह नमके जीवन का एक अंग बन गई है। टोस्कानिनी जैमे व्यक्ति ने उगके बारे में कहा था कि ‘मारियन जैसी आवाज सौ वर्षों में एक बार सुनी जाती है।’ विश्व विख्यात फ़िनिश संगीतज्ञ ने जो बहुत कम लोगों से मिलते हैं एक बार मारियन को अपने यहाँ आमंत्रित किया। उन्होंने अपनी पत्नी से कॉफी तैयार करने के लिए कहा परन्तु जब वे गाना सुन चुके तो इतने प्रसन्न हुए कि वे एकदम चिल्ला उठे—हम काफी नहीं परन्तु शैम्पेन पियेंगे। वे मारियन से बोले कि तुम्हारी आवाज के लिए मेरे घर की छत बहुत नीची है। उन्होंने अपनी सर्वोत्तम रचना Solitude उसे गाने के लिए दे दी।

१६३६ में कुमारी एडीसन एकाएक समस्त राष्ट्रीय एक विषय बन गई जबकि उन्हें वाशिंगटन के कान्स्ट्यूशन हाल में महिला सभा में प्रवेश नहीं दिया गया। इसके प्रति-क्रिया स्वरूप श्रीमती रुजवेल्ट ने उस सभा से त्याग-

पत्र दे दिया। मारियन के लिए वह दिन अत्यंत महत्वपूर्ण था। ज़िम्मे दिन अमेरिकन गवर्नमेंट ने उसे लिंकन स्मारक में गाने के लिए इजाजत दी। वहाँ उसने ७५००० के जनसमुदाय के सामने गायी और प्रसिद्धि को प्राप्त किया। जनता ने उसका गाना बहुत पसंद किया उसका गाना संगीत इतिहास में अद्वितीय था।

चार वर्ष पूर्व मारियन को एक और महान सफलता मिली जब मेट्रोपोलिटन ऑपेरा हाउस में जनता के सामने वह एक कलाकार के रूप में उपस्थित हुई। वह पदवी नीग्रो महिला थीं जो मेट्रो के ७० वर्ष के अस्तित्व में रंगमंच पर आई थीं।

प्रारंभिक दिनों में मारियन को बहुत कष्ट उठाने पड़े थे। उसकी संगीत शिक्षा बहुत थोड़ी थी। वह किसी अच्छे संगीत विद्यालय में शिक्षा पाना चाहती थी परन्तु आर्थिक अवस्था अच्छी न होने के कारण उसकी इच्छा पूर्ण न हो पाई। जब कभी उसके पास थोड़ा बहुत भी धन आता उसी समय वह अपनी आवाज के लिए कुछ न कुछ किया करती थी। बहुत से अवसरों पर उसके मित्रों ने उसके लिए धन एकत्रित किया जिसके द्वारा कि उनकी मारियन को उपयुक्त शिक्षा मिल सके। लड़की के रूप में कुमारी एन्डरसन बापटिस्ट चर्च फिलडेल्फिया में पहले छोटी और फिर बड़ी के समूह में गायी करती थीं। वह कभी-कभी प्रार्थना के चारों हिस्से अकेली ही गा लिया करती थी। फिर उसने धीरे-धीरे स्कूल, विश्वविद्यालयों में गाना प्रारंभ कर दिया। उसी गायिका को जो कि आज अमेरिका में अपनी आवाज का सबसे अधिक पारिश्रमिक लेती है पहला पारिश्रमिक केवल ५० सेंट का मिला था। परन्तु उसे सफलता सरलता में नहीं मिली। न्यूयार्क के टाउन हाल में उसका पहला प्रयास असफल रहा। उसके बाद ऐसे कितने ही अवसर आए अब कि उसे असफलता ही मिली और उसे धन की सदा तंगी रही। उसी के ऊपर उसकी विधवा माता और दो छोटी बहनों का भार था जिसे अपनी वह शक्ति अनुपार वहन किए जाती थी।

१९३१ में उसे जूलियस स्कालरशिप मिली जिसके फलस्वरूप उसे शिक्षा के लिए यूरोप जाने का अवसर मिला। वहाँ उसने बहुत से प्रोग्राम दिए। उसे सफलता मिली और उस सफलता से प्रेरित होकर उसने यूरोप के अन्य मुख्य स्थानों पर अपने प्रोग्राम दिए।

१९३५ में जब वह अमेरिका वापस आई तो वहाँ की जनता उसके नाम से परिचित हो चुकी थी।

वर्षों से आलोचक उसकी मधुर आवाज का विशेषण खोज रहे हैं जिस प्रकार कि मोनालिसा की मुस्कान का रहस्य नहीं खुल सका इसी प्रकार मारियन का मधुर स्वर भी रहस्य ही रहा। आर्य और ब्रोनसन ने “अमेरिकन मर्क्युरी” में लिखा है कि “मारियन हमारे समय का मधुरतम साज है जो सब गुणों से युक्त है और जो योग्यतापूर्वक संचालित किया जाता है।”

मारियम स मिलने के बाद प्रत्येक व्यक्ति उसके बारे में वही सोचता है। जैसे कि फेनी हार्ट ने सोचा और कहा था मारियन केवल महान ही नहीं परन्तु वह तनी ही सरल भी है।”

॥

हीरों के सम्बन्ध में

सिडनी ब्रीफल लंदन में हीरों के एक बहुत बड़े व्यापारी है। पॉच भाषाएँ जानते हैं। वे बहुत जल्दी-जल्दी बोलते हैं और जब वह हीरों को काटने के लिए अपने सम्मुख रखते हैं—उस समय वे ३ भाषाओं में बातें करते हैं। उन्होंने हीरों के सम्बन्ध में जो बातें कही हैं उनमें से कुछ यहाँ दी जाती हैं :

“यद्यपि मेने हजारों प्रकार के हीरे देखे हैं—तो भी मेने कभी दो हीरे एक प्रकार के नहीं देखे। प्रत्येक हीरा भिन्न प्रकार का होता है।

मे जब कभी कोई हीरा देखता हूँ तो मेरा हृदय में अनेक प्रकार की भावनाएँ जागृत हो जाती हैं। इन में से कुछ सुन्दर पत्थरों के प्रति मुझे मोह-सा है।

यदि एक स्वाभाविक और खुशदरे हीरे को काटने के पश्चात् उसका वजन आधा भी रह जाय तो आप की चूँत की अच्छी तरह पूर्ति हो जाती है।

हीरे को हीरे के कणों से ही काटा जाता है और एक केरेट के हीरे को काटने में एक दिन का समय लग जाता है।

लकड़ी और इन्ही प्रेनों के सहारे ही हीरों को काटना पड़ता।

एक हीरा चाहे वह छोटा हो या बड़ा उसकी ५८ तहें होती हैं और वे अपने अन्दर प्रकाश की किरणों को समाविष्ट कर लेती हैं जो कि अनेक रंगों में स्फुरित होती हैं।



सम्पादकीय

धीरे धीरे या जल्दबाज़ी

हिन्दी के सम्बन्ध में हमारी संसद् में प्रायः भाषण होते रहते हैं। संसद् के उन सदस्यों में से जो सद्मय अंग्रेज़ी की वर्तमान स्थिति में अनिश्चित काल तक कुछ विशेष परिवर्तन नहीं करना चाहते और हिन्दी के प्रति भी अपनी अनासक्ति नहीं प्रदर्शन करना चाहते—हिन्दी वालों को प्रायः यह परामर्श देते रहते हैं कि उन्हें अपने कार्य को धीरे धीरे करना चाहिए। धीरे-धीरे से सम्भवतः उनका यह अर्थ है कि इस कार्य में किसी प्रकार की जल्दबाज़ी नहीं की जानी चाहिए क्योंकि जल्दबाज़ी करने से हिन्दी के कार्य को हानि पहुँचने की सम्भावना है। भारतवर्ष को स्वतन्त्रता की प्राप्ति किए बारह वर्ष हो चुके हैं और हमारे संविधान में हिन्दी के लिए जो ममय निर्धारित किया गया था वह समय निकट आता जा रहा है। इतने समय में हिन्दी के सम्बन्ध में क्या कार्य हुआ, इस कार्य को किस प्रकार और आगे बढ़ाया जाना चाहिए; क्या हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में निकट सम्बन्ध स्थापित हुए हैं और किस प्रकार उन्हें घनिष्ठ और निकटतम बनाया जाना चाहिए—इन बातों पर क्रियात्मक रूप में विचार करने की अपेक्षा—यह कहा जाता है कि हिन्दी-वालों को अपने कार्य को बिलकुल धीरे-धीरे करना चाहिए और इसमें उन्हें किसी प्रकार की जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए। जो बात हिन्दी के सम्बन्ध में कही जा रही है—वही बात अन्य भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। भारतीय भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्रों में कब तक अपना समुचित स्थान ग्रहण कर लेंगी—यह एक ऐसा प्रश्न है जिसे अब टाला नहीं जा सकता। राजनीति के जहाँ अनेक अर्थ होते हैं उसमें से एक अर्थ टालमटोल भी है। क्या धीरे-धीरे का अर्थ टालमटोल की नीति है। यदि हिन्दी और भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में कार्य अत्यन्त तेज़ी के साथ किया जा रहा होता और इस तेज़ी से उमक कार्य में किसी प्रकार की हानि पहुँचने की सम्भावना होती और उसमें ब्रेक लगाने का प्रयत्न किया

जाता—तो यह 'धीरे-धीरे' की बात कुछ समझ में आ सकती थी। एक ओर तो यह कहा जाता है कि हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में पर्याप्त साहित्य नहीं है; उनमें समुचित पारिभाषिक शब्दावली नहीं है, उनमें यह नहीं है और वह नहीं है—और जब उनके सम्बन्ध में कुछ कार्य किया जाने लगता है तो ये आवाज़ें उठाई जाने लगती हैं कि धीरे चलो। जब पहले ही चाल अत्यन्त धीमी हो और चिऊँटी की चाल से चला जा रहा हो तब यह कहना कि धीरे चलो—इसका एक मात्र यही अर्थ हो सकता है कि चलो ही न चलो और चलना बन्द कर दो। संस्कृत में कहते हैं : शनैः कन्या शनैः पन्याः शनैः पवतलंघनम्—यानी शीघ्रता के साथ किया जा सके। इन कार्यों में धीरे-धीरे-धीरे पर्याप्त समय लगता है। इसके लिए तो प्रत्येक प्रोत्साहन, प्रेरणा, शक्ति, सहायभूत और सहायता की आवश्यकता है परन्तु इनके लिए यदि प्रतिबन्ध स्थापित किए जाएंगे तो इससे न केवल इन कार्यों में गति रुक जाएगी अपितु इन कार्यों के प्रति उत्साह भी मन्द पड़ जाएगा। यह सत्य है कि हम जितना आगे बढ़ेंगे—उतना ही अधिक हमें सावधान होना पड़ेगा परन्तु सावधान हो कर चलने का अर्थ यह कभी नहीं हो सकता कि कार्य के सम्बन्ध में किसी प्रकार की अनिश्चितता को उत्पन्न कर दिया जाए। इस समय 'धीरे-धीरे' और इसी प्रकार की अन्य चेतावनियों से भाषाओं के सम्बन्ध में अनिश्चितता के वातावरण को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

सुनते हैं कि इसराइल राज्य में हिब्रू सीखने के लिए ६ महीनों का समय दिया जाता है। यही कारण है कि इसराइल देश में हिब्रू भाषा की उन्नति अत्यन्त स्वरूप काल में हो गई है और वहाँ हिब्रू भाषा ज्ञान-विज्ञान और प्रशासन की भाषा बन गई है परन्तु हमारे देश में भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में अभी तक वाद-विवाद चल रहा है; कमेटियों हो रही हैं और भाषण

हो रहे हैं परन्तु इनके सम्बन्ध में जो कार्य हो रहा है और इस कार्य को जिस प्रकार किया जाना चाहिए उस पर कुछ विशेष विचार या दृष्टिपात नहीं किया जाता। हमें यह कहने में दुःख होता है कि संसद् के बहुत-से सदस्य भारतीय भाषाओं के प्रति अपने उत्तरदायित्व को अनुभव नहीं कर रहे हैं और यदि कुछ अनुभव भी करते हैं तो उसे पूर्ण नहीं कर रहे हैं।

केवल अंग्रेजी का ज्ञान अपर्याप्त

जो लोग अंग्रेजी का विरोध करते हैं उनका उस विरोध से यह अर्थ कदापि नहीं है कि अंग्रेजी विश्व की एक महान् भाषा नहीं है और या उसका अध्ययन अध्यासम्भव पूर्णता के साथ नहीं किया जाना चाहिए। उनके कहने का मुख्यतया यह अर्थ है कि अंग्रेजी का ज्ञान सर्वथा पूर्ण होने पर भी अब वह हमारी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं है। जो लोग दिन रात अंग्रेजी की प्रशंसा के पुल बाँधते रहते हैं उन्हें इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि अब एक मात्र अंग्रेजी के ज्ञान से ही कार्य नहीं चल सकेगा। अंग्रेजी के राज्य में एक मात्र अंग्रेजी के द्वारा कार्य चल जाता था परन्तु अब वह जमाना समाप्त हो गया है। अंग्रेजी को पूर्णता के साथ सीखने का यह अर्थ नहीं हो सकता कि अन्य भाषाओं के ज्ञान की प्राप्ति के प्रति उदासीन रहा जाए। हम तो समझते हैं किसी भी भाषा का ज्ञान तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि उसके साथ-साथ कुछ अन्य भाषाओं का भी गंभीर ज्ञान प्राप्त न किया जाए। अंग्रेजी भाषा चाहे कितनी ही महान् और पूर्ण क्यों न हो उसकी महानता और पूर्णता का अर्थ विश्व की अन्य भाषाओं की अपवृत्ति और तुच्छता नहीं हो सकता।

पिछले दिनों हैदराबाद की रोटरी क्लब में श्रीयु. जे. जी. बर्टन का 'आज के भारतवर्ष में अंग्रेजी' विषय पर व्याख्यान हुआ। श्रीयु. जे. जी. बर्टन उस्मानिया विश्वविद्यालय में स्टडीज सेक्टरल इन्स्टिट्यूट ऑफ इंग्लिश का डायरेक्टर हैं। उन्होंने अपने भाषण में कहा: "हैदराबाद में स्थापित अंग्रेजी की कन्द्रीय संस्था एक स्वयं चालित संस्था है। इसे भारत के कन्द्रीय प्रशासन ने अंग्रेजी के अध्ययन को समुचित करने के लिए स्थापित किया है। भारतवर्ष में अंग्रेजी के सम्बन्ध में क्या होमा? इस विषय में इस देश में विशेष कर उत्तरी

प्रान्तों में इच्छा के अनुसार अटकलें लगाई जा रही हैं जो लोग इस प्रकार का स्वेच्छापूर्ण चिन्तन करते हैं उनको न केवल अपने प्रदेश अपितु समस्त देश को ध्यान में रख कर विचार करना चाहिए। ... १९४७ में पूर्व भारतवर्ष में अधिकांश स्कूलों में अंग्रेजी के माध्यम के द्वारा पढ़ाई की जाती थी। अंग्रेजी का अध्ययन किया जाता था क्योंकि अंग्रेजी के ज्ञान पर ही तब पद और नौकरियाँ प्राप्त होती थीं। १९४७ में भारतवर्ष की राजनैतिक परिस्थितियाँ बदल गईं और भारतवर्ष के कुछ क्षेत्रों में अंग्रेजी को छोड़ दिया गया। बहुत से लोग यह समझते हैं क्योंकि अंग्रेज भारतवर्ष से चले गए हैं इस लिए उनकी भाषा को भी इस देश से चला जाना चाहिए। परन्तु अंग्रेजी एकमात्र अंग्रेजी की ही सम्पत्ति नहीं है। अंग्रेजी समस्त विश्व की और व्यापार की भाषा है। विश्व का अधिकांश साहित्य अंग्रेजी में प्रकाशित होता है। संसार के दो-तिहाई समाचार पत्र और दो-तिहाई विज्ञान और यंत्रशास्त्र की पुस्तकें अंग्रेजी में प्रकाशित होती हैं। इस समय भारतवर्ष के स्कूलों में ४ वर्ष तक अंग्रेजी पढ़ाई जाती है। जो पुस्तकें विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती हैं वे छपाई की दृष्टि से अशुद्ध होती हैं और उनकी भाषा भी शुद्ध नहीं होती। फिर विद्यार्थियों को अंग्रेजी सिखाने का तरीका भी ठीक नहीं है। विद्यार्थी इस प्रकार अंग्रेजी ४ से ६ वर्षों तक घण्टे प्रति सप्ताह अध्ययन करते हैं। इन अवस्थाओं में सुधार किया जाना चाहिए जिसमें कि अंग्रेजी का अध्ययन ठीक तरीके से हो सके। मैं यह नहीं कहता कि भारतवर्ष में अंग्रेजी के अध्ययन को अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए और न मैं हिन्दी का विरोधी हूँ। परन्तु हिन्दी में साहित्य विशेष कर वैज्ञानिक और यांत्रिक साहित्य उत्पन्न करने में समय लगेगा। भाषा के प्रश्न पर राजनैतिक दृष्टि से नहीं, शिक्षा की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए..."

यह सत्य है कि भाषाओं के सम्बन्ध में शिक्षण की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए परन्तु यह असम्भव है कि उन पर राजनैतिक दृष्टि से विचार ही न किया जाए। विश्व की दृष्टि से भी भारतीय भाषाओं का अध्ययन आवश्यक है। चाहे भारतीय भाषाएँ कितनी ही अपूर्ण क्यों न हों—परन्तु क्या इसी के कारण उनका और उनके द्वारा अध्ययन का विकास नहीं किया जाएगा?

